मान मंदिर बरसाना

मासिक पत्रिका, वर्ष १०, अंक ०३, श्रीकृष्ण सं.५२५१, 'फाल्गुन-चैत्र' वि.सं. २०८२ (मार्च २०२६ ई.)

श्रीमाताजी गौशाला में पूज्यश्री बाबामहाराज के सानिध्य में 'रंगीली होरी' का उत्सव बड़ी धूम से मनाया

मूल्य १०/-

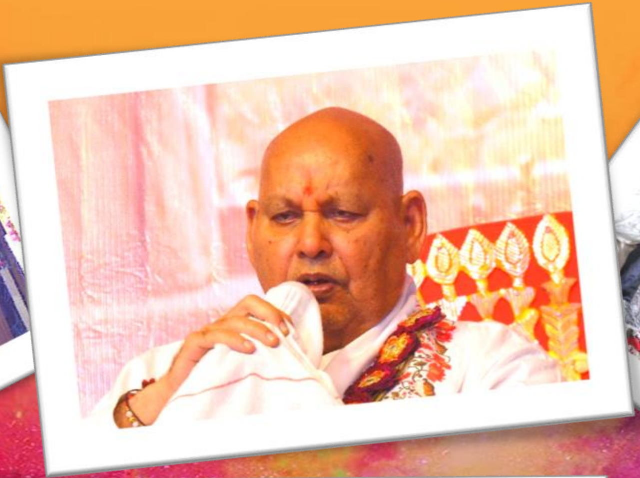

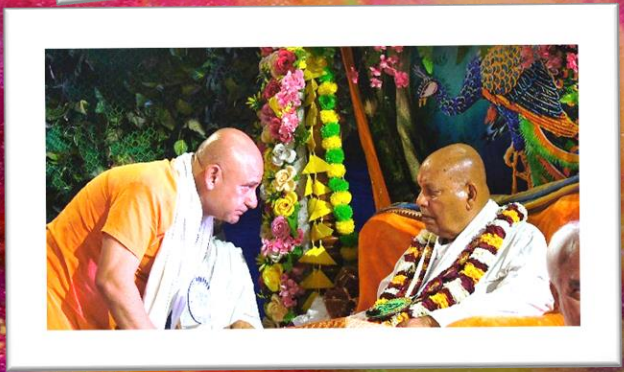

'मान मंदिर कला अकादमी' द्वारा रंगीली होली पर आयोजित नाटिका के दृश्य

+

विषय-सूचिका

क्रमांक	प्रसंग	पृष्ठांक
१	होली की जन्मभूमि 'ब्रज-बरसाना'	०४
२	परम रसमय 'श्रीबरसाना धाम'	०७
३	मंगलकारी महोत्सव 'कथा-कीर्तन'	११
४	वास्तविक भक्ति 'सतत्-स्मरण'	१४
५	निर्मलता की पहिचान 'निर्वासनिक मन'	१७
६	'संकीर्तन' ही सरस साधन	१९
७	उपयोगी औषधि 'गौमूत्र'	२१
८	अवढरदानी परमदेव 'श्रीशंकर भगवान्'	२२
९	श्रीब्रज-संरक्षक 'दाऊ दयाल'	२७

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –

"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले।"

*** योजना ***

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकालें व मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवाद्रव्य किसी विश्वसनीय गौसेवा प्रकल्प को दान कर गौरक्षा कार्य में सहभागी बन अनन्त पुण्य का लाभ लें। हिन्दूशास्त्रों में अंशमात्र गौसेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया

INSTAAL करें --- PLAY STORE से----- MAANINI APP

बाबाश्री के सत्संग/कीर्तन/भजन, साहित्य, आदि यहाँ से FREE - DOWNLOAD कर सकते हैं व सुन सकते हैं।

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८.३० से ९:३० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:०० से ८:०० बजे तक प्रतिदिन live व d-live प्रसारण देख सकते हैं।

संरक्षक- **श्रीराधामानबिहारीलाल**, प्रकाशक – **राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर ,गह्वरवन, बरसाना, मथुरा** (उ.प्र.)
mob. **राधाकांत शास्त्री** ....9927338666, Website :www.maanmandir.org ,
(E-mail :info@maanmandir.org)

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें, जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें। हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है – सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ। जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि।।(श्रीमद्भागवत ३/७/४१) अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है; समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता।

इस पत्रिका को आप google chrome पर जाकर सीधे free download कर सकते हैं आपको केवल इतना सर्च करना है- हमारे बारे में। मान मंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट (यहाँ से आप पत्रिका सीधे download कर सकते हैं)

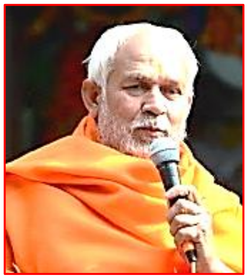

प्रकाशकीय

सम्पूर्ण जगत् में 'रंगभरी होली' का प्रसार 'श्रीब्रजभूमि' से ही हुआ । ब्रज में श्रीराधामाधव ने गोपाङ्गनाओं और गोपकुमारों के साथ जो 'होरी-लीला' की, वह तीनों लोकों में विख्यात है; यह ब्रज की शोभा है, ऐसी 'रसमयी होली' केवल ब्रज में ही होती है, ब्रज के बाहर यह रस नहीं है । मर्यादा के संकुचित बन्धनों को तोड़कर विशुद्ध प्रेम-रंग में रंगी 'होली का रस' श्रीराधामाधव ने ब्रज में बहाया है और आज तक ब्रज के विभिन्न ग्रामों में परम्परानुसार श्रीराधामाधव युगल रसराज द्वारा द्वापर में खेली गई होरी का ही अनुकरण ब्रजवासी आज भी अत्यन्त उत्साह और उमंग के साथ करते हैं । ब्रज की होलियों का शुभारम्भ 'श्रीबरसाना की रंगीली होली' से ही होता है । बरसाना में रंगीली-होरी लगभग ५००० वर्ष से भी अधिक पुरानी है और इसका प्रमाण 'श्रीगर्गसंहिता' में है । बरसाना-नन्दगाँव की 'लठामार होली' सम्पूर्ण ब्रजमण्डल व विश्व में सुप्रसिद्ध है । 'बरसाने की रसभरी होली' के अद्वितीय, विलक्षण और लोकातीत रस का पान करने के लिए बड़े-बड़े देवगण भी लालायित रहते हैं; तभी तो अष्टछाप के मूर्धन्य संत कवि श्रीनन्ददासजी ने लिखा है – **"शेष महेस सुरेस न जानें, अज अजहूँ पछताँय । सो रस रमा तनक नहिं पायौ, जदपि पलोटत पाँय ॥"** शेषजी, महादेवजी, इन्द्र, ब्रह्मा आदि देवगण आज तक पछताते हैं कि हम ब्रज में उत्पन्न नहीं हुए, अन्यथा हम भी ब्रज-बरसाने की रसमयी होरी-लीला का रसास्वादन करते । ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी, वैकुण्ठ-स्वामिनी 'श्रीलक्ष्मीजी' जो सदा ही श्रीहरि की चरण-सेवा में सलग्न रहती हैं; उनको भी 'ब्रज-बरसाने की रंग भरी होरी' का आस्वादन दुर्लभ है; फिर यह रस किसको मिलता है तो श्रीनन्ददासजीमहाराज कहते हैं – **"श्रीवृषभानुसुता पद-अम्बुज, जिनके सदा सहाय । एहि रस मगन रहत जे तिन पर, नन्ददास बलि जाय ॥"** जिसके ऊपर रासरासेश्वरी, महाभाव स्वरूपा अनन्त करुणामयी 'श्रीराधारानी' की कृपा हो जाती है, उसको इस देव-दुर्लभ रसामृत का पान करने का सौभाग्य प्राप्त होता है; बाकी लोग इस रस से वञ्चित ही रहते हैं । बिना 'श्रीराधारानी' की कृपा के यह रस किसी को नहीं मिल सकता । श्रीराधामाधव व उनके परिकरों द्वारा ब्रज में जो रंग-भरी, रस-भरी 'होरी-क्रीडाएँ' की गईं, उनका ब्रज के रसिक महापुरुषों ने दिव्य दृष्टि से साक्षात्कार किया और कलिकाल की भीषण ज्वाला से तप्त होते मानवों के कल्याण हेतु उन सरस लीलाओं का गान किया । कराल कलिकाल दिन-प्रतिदिन 'सनातन धर्मी संस्कृति' पर कुठाराघात करता जा रहा है, ऐसी भीषण स्थिति में रसिक-महापुरुषों द्वारा रचित 'होली-लीला का पदगान' अवश्य ही भव-बन्धन व काल-बन्धन से बचाता है । 'होली-लीला' की गायन-शैली श्रृंगार-रस प्रधान है, जिसमें 'प्रिया-प्रियतम के दिव्य केलि-रस की भाव-रश्मियाँ' भावुक उपासकों के हृदय की रस-तरङ्गिणी का प्रवाह बनकर लोक-कल्याण का कारण बनती हैं । फाल्गुन, शुक्ल, नवमी को बरसाने की रंगीली-रसीली 'लट्ठमार होरी' होती है; जिसमें बरसाने की गोपियाँ, नन्दगाँव के ग्वालों पर लट्ठ से प्रहार करती हैं और वे ढाल से रोकते हैं । रसिकों ने श्रीकृष्ण की गौरवपूर्ण हार का वर्णन करके बड़े शान के साथ उनके भागने का भी वर्णन किया है । यहाँ 'लट्ठमार-होरी' में 'बाँस या लट्ठ' से मारने की परम्परा क्यों रखी गयी है ? इसके कई कारण हैं, जैसे – नायक की अधिक चपलता को रोकने के लिए लकुट ही काम आती है और गोपीजनों के लट्ठ-प्रहार को ग्वालवाल रसमय हास-परिहास करते हुए ढालों के द्वारा बचाते हैं । इस प्रसंग में नायक की हार ही रस वृद्धि का कारण होती है । श्रीकृष्ण 'श्रीजी' के लिये हार बनाकर ले जाते हैं । हार के बदले 'श्रीराधिकारानी' पराजय का हार देकर श्रीश्यामसुन्दर के रस-गौरव को बढ़ाती हैं ।

कार्यकारी अध्यक्ष

राधाकान्त शास्त्री

श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

॥ राधे किशोरी दया करो ॥

हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो ।
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो ।
विषम विषय विष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो ।
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो ।
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो ।
कबहुँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्‌यो ।

होली की जन्मभूमि 'ब्रज-बरसाना'

बाबाश्री द्वारा कथित सत्संग (श्रीहोरी-महिमा '१५/३/२००८') से संकलित

संकलनकर्त्ता – अध्यक्ष – डॉ. श्रीरामजीलालजी शास्त्री,

श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

वैसे तो होली का पर्व लगभग पूरे भारत वर्ष में मनाया जाता है लेकिन होली का प्रारम्भ बरसाना से ही होता है । 'रंगीली होरी' श्रीबरसाना धाम का परम रसमय महोत्सव है । इस रसोत्सव से बरसाने की रस-गरिमा का पता चलता है । श्रीब्रजभूमि के रसोत्सवों में होरी-लीला विशेष प्रधान है, जिसका शुभारम्भ 'श्रीबरसाने की रंगीली रसभरी लट्ठमार होरी' से ही होता है । 'होरी' शब्द का साधारण अर्थ है ***– जिसके अंतःकरण का उत्साह, हुल्लास, उमंग व प्रेमरसानन्द (प्रभु प्रेम) बाहरी क्रिया के रूप में परिवर्तित हो जाए, उसे 'होरी' कहते हैं ।*** 'बरसाने की लट्ठमार होरी' श्रीजी व उनकी सखी-सहचरियों के आन्तरिक प्रेमरस को प्रकट करती है । इस रस का अनुभव श्रीराधिकारानी की कृपा-करुणा से ही होता है । 'श्रीजी की दया' प्राप्त करने के लिए श्रीजीवगोस्वामी जैसे रसिक संत-महापुरुषों ने कुछ अति आवश्यक नियम बताए हैं, जिसमें कहा है कि श्रीब्रजभूमि, राधा-आराधन व ब्रजरसिक विशुद्ध संत की सर्वात्मभावपूर्वक शरणागति से ही श्रीराधामाधव की सरस ब्रजलीलाओं का वास्तविक रसास्वादन होता है – **"अनाराध्य राधा पदाम्भोज रेणुं, अनाश्रित्य वृन्दाटवीं तत्पदाङ्काम् । असम्भाष्य तद्भाव गम्भीर चित्तान्, कुतः श्यामसिन्धोः रसस्यावगाहः ॥"** कहने का तात्पर्य यही है कि श्रीनाम-धाम व संत-कृपा से ही श्रीब्रजरस की रसानुभूति होती है । 'रंगीली-होली' के परम पावनमय पर्व पर हम सब लोग श्रीराधारानी से यही याचना करते हैं कि हमारी ब्रजभक्ति की समस्त निष्ठायें निरन्तर बढ़ती रहें, जिससे आपकी कृपा-वर्षा को संप्राप्त करें । ब्रज में भी सभी गाँवों में होली होती है, जैसे बरसाने के बाद ही ब्रज के सभी स्थानों में होली शुरू होती है । दशमी को नन्दगाँव में होली का पर्व मनाया जाता है, एकादशी से पूर्णिमा तक वृन्दावन में होलिकोत्सव की धूम रहती है । उसके बाद दूज को बलदेव ग्राम (दाऊजी) में दाऊ जी का होरंगा होता है । दूज (द्वितीया) के दिन ही गोवर्धन के जतीपुरा स्थित गुलाल कुण्ड में होली का उत्सव मनाया जाता है । तीज को आन्योर (गोवर्धन) में होली का त्योहार मनाया जाता है, दूज के दिन ही राधा कुण्ड के निकट मुखराई ग्राम (श्रीजी का ननिहाल) में विश्व प्रसिद्ध चरखुला नृत्य का आयोजन होता है । दूज-तीज के दिन जाव-बठैन की होली होती है । दूज के दिन ही राल की भी होली होती है, पंचमी तिथि को खायरा में होलिकोत्सव मनाया जाता है । सारे ब्रज में होलिकोत्सव अलग-अलग तिथियों में बड़े ही धूमधाम के साथ होता रहता है परन्तु नवमी तिथि से पहले ब्रज में कहीं भी होली का पर्व नहीं मनाया जाता है । ब्रज में अनेक स्थलों पर इतने विभिन्न प्रकार की होली होती है कि ऐसी संसार में अन्यत्र कहीं नहीं होती है । ६० वर्ष से अधिक समय से हम ब्रजवास कर रहे हैं किन्तु ब्रज के सभी स्थानों की होली तो आज तक हम भी नहीं देख सके हैं । इतने भिन्न-भिन्न तरह से होलिकोत्सव ब्रज में मनाया जाता है जैसे नन्दगाँव-बरसाने में लठामार होली होती है । ब्रज में ही इतनी विविध प्रकार की होली है कि हर गाँव में अलग ढंग की होली होती है, जिन्हें हम ही नहीं देख पाये । इसी से पता चलता है कि सारे संसार में होली का प्रचलन ब्रज से ही हुआ है । संसार के अन्य स्थानों में होली के दिन अधिक से अधिक इतना ही लोग करते हैं कि गुलाल आदि रंग उड़ाते हैं, गीले रंग से एक-दूसरे को भिगो देते हैं, मुख पर रंग मल देते हैं और कुछ गीत गा लेते हैं लेकिन ब्रज में तो विभिन्न स्थलों के मन्दिर में समाज गान होता है । बठैन में बबूल के झामे के काँटों द्वारा झण्डी की रक्षा होती है, जिससे पता चलता है कि कौन जीतता है, कौन हारता है ? दो दल होते हैं, राधारानी के और श्रीकृष्ण के, दोनों दल अलग-अलग चलते हैं । इसी प्रकार बलदेव ग्राम (दाऊजी) की विशेष प्रकार की होली, जिसे होरंगा कहते हैं, इसमें दाऊ जी के पार्षद ब्रजवासी

वहाँ की गोपिकाओं पर रंग डालते हैं, गोपियाँ उनके वस्त्रों को फाड़कर अर्ध नग्न कर देती हैं और फिर उन्हीं फटे वस्त्रों का कोड़ा बनाकर उनके अधखुले बदन पर कोड़े से पिटाई करती हैं । नन्दगाँव-बरसाने में गोपियाँ लाठियों से पुरुष ब्रजवासियों पर प्रहार करती हैं और वे ब्रजवासी लकड़ी की ढाल से अपने शरीर की रक्षा करते हैं । गिड़ोह और नन्दगाँव के ब्रजवासियों के मध्य भी झामे की होली होती है । राल और भदार ग्रामों में झण्डी के लिए प्रेम की लड़ाई होती है । इस तरह ब्रज में इतने तरह की होलियाँ होती हैं कि उन्हें हम भी नहीं देख पाए हैं किन्तु सबका मूल बरसाना है । नवमी तिथि के पहले ब्रज में होली कहीं नहीं होती है । नवमी तिथि से ही ब्रज के गाँवों में अलग-अलग ढंग की युद्धस्तर की होली होती है । इनमें दो टोल होते हैं, जिनमें देखा जाता है कि कौन जीतता है और कौन हारता है ? नवमी तिथि से तो पन्द्रह दिनों तक लगातार ब्रज के अलग-अलग गाँवों में होली होती है । जिसके पास साधन हो, वह इन गाँवों में जाकर वहाँ की होली का दर्शन कर सकता है । चूँकि सम्पूर्ण ब्रजमण्डल में होली का प्रारम्भ बरसाना से ही होता है, इसलिए सारे विश्व में होली का जनक बरसाना ही है । इस बात को बहुत कम लोग जानते हैं क्योंकि भारत में अन्य स्थानों में तो धूलेण्डी के दिन ही रंग भरी होली मनाई जाती है, लोग एक दूसरे पर रंग फेंकते हैं, इससे अधिक वे कुछ नहीं जानते हैं । जब ब्रज के बाहर का व्यक्ति ब्रज में आता है तब उसको पता चलता है कि होली की कितनी विधायें हैं । ये सभी विधायें श्रीजी के द्वारा प्रकट हुई हैं । गर्ग संहिता में इसका प्रमाण भी है, पुराणों में भी मैंने इसके बारे में पढ़ा है । ब्रज की ही देखादेखी करने पर भारत में भी सभी जगह मन्दिरों में भी होली पर रंग का प्रयोग होने लगा है, यहाँ तक कि शिव-पार्वती की भी होली होने लगी, जिसके गीत हम लोग गाते थे तथा सीता-राम की भी होली होती है परन्तु सब तरह की होली का मूल है बरसाना, इसके बारे में मैंने पुराणों और संहिताओं में पढ़ा । गर्गसंहिता में तो होली का एक अलग ही टोल है । सब जगह की होली का जनक बरसाना ही है । यहाँ से ही फाल्गुन की नवमी तिथि से होलिकोत्सव का प्रारम्भ होता है और फिर चैत्र माह तक ब्रज में होलिकोत्सवों की धूम मची रहती है । नवमी तिथि से पहले ब्रज में कहीं भी होली नहीं होती है । दशमी को नन्दगाँव की होली, एकादशी से पाँच दिन तक वृन्दावन में, उसके बाद दाऊ जी (बलदेव ग्राम), जाव-बठैन, राल-भदार, गिड़ोह, गोवर्धन में आन्योर-जतीपुरा, मुखराई, गोकुल आदि स्थानों में अलग-अलग तरह की होली प्रारम्भ हो जाती है और चैत्र तक चलती रहती है परन्तु ब्रज के समस्त होलिकोत्सवों का शुभारम्भ राधारानी के घर बरसाना से ही होता है । फाल्गुन की नवमी तिथि के पहले ब्रज तो क्या, पूरे भारत में भी कहीं होली नहीं होती है । जैसे अयोध्या-मिथिला में सीता-राम जी की होली होती है किन्तु वह नवमी तिथि के बाद, पूर्णिमा के अगले दिन धूलेण्डी को ही मनाई जाती है । सम्पूर्ण विश्व, सम्पूर्ण भारतवर्ष तथा ब्रज की सबसे पहली होली फाल्गुन माह की नवमी तिथि को बरसाने में ही मनाई जाती है । इसकी अत्यन्त विस्तृत कथा भी है । इस लीला को सब लोग नहीं जानते हैं । प्राचीन परम्परा के अनुसार फाल्गुन की अष्टमी तिथि को नन्दगाँव का पाँड़े बरसाने में होलिकोत्सव के आयोजन की सूचना देने आता है । वर्तमान में तो वह परम्परा समाप्त हो गयी है । पहले नन्दगाँव का पाँड़े अष्टमी को जब बरसाने आता था तो उसको बरसाने में दक्षिणा दी जाती थी किन्तु एक बार दक्षिणा को लेकर हुये पारस्परिक विवाद के कारण उसे भगा दिया गया और तब से बरसाने के गोस्वामियों में से ही कोई एक नन्दगाँव का पाँड़े बनकर अष्टमी तिथि के दिन उस परम्परा का निर्वाह करता है । इस तरह लोभ के कारण परम्परायें विकृत भी हो जाती हैं फिर भी अष्टमी तिथि से ही बरसाने-नन्दगाँव की होली का श्रीगणेश हो जाता है, उसके पश्चात् नवमी तिथि को नन्दगाँव से नन्द के लाल होली खेलने बरसाना में आते हैं । कीर्ति रानी के पास समधिन यशोदाजी बरसाने आती हैं, जिसको 'समध्योरा' कहते हैं । उस समय राधारानी की मैया कीर्तिजी एवं श्यामसुन्दर की मैया यशोदा जी की पारस्परिक होली होती है तथा नन्दबाबा और वृषभानु बाबा की भी परस्पर में प्रेम भरी होली होती है । उस होली में नन्दलाल की बारात निकलती है, देवगण भी बराती बनकर उसमें सम्मिलित होते हैं । इस तरह फाल्गुन की नवमी तिथि की एक बड़ी लम्बी कथा है, जिसको बहुत से लोग तो नहीं जान पाते हैं । जबकि नवमी तिथि को बरसाने में लाखों दर्शनार्थियों की भीड़ आती है किन्तु इस विशेष दिन क्या हुआ है,

इस लीला का किसी को ज्ञान नहीं है । एक परम्परा चल रही है, पूरे विश्व के लोग नवमी को बरसाना आते हैं किन्तु इस परम्परा का आरम्भ कैसे हुआ, इसके मूल में कौन सी लीला घटित हुई है, इसका सभी लोगों को कोई ज्ञान नहीं है । एक बार किसी व्यक्ति ने मुझसे पूछा था कि ब्रज में ठाकुरजी-श्रीजी प्रत्यक्ष तो दिखाई नहीं देते हैं, ऐसी स्थिति में उनके यहाँ होने अथवा उनकी यहाँ हुई लीलाओं का क्या कोई प्रत्यक्ष प्रमाण है ? मैंने कहा प्रत्यक्ष प्रमाण है तो उन सज्जन ने कहा कि प्रत्यक्ष प्रमाण आप दिखाइये । मैंने उनको बताया कि रंगीली होली के दिन बरसाना-नन्दगाँव के मध्य लगभग साढ़े पाँच हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुई परम्परा इस घनघोर कलिकाल में भी अब तक चल रही है, उसका दर्शन करने आज भी सम्पूर्ण विश्व से लाखों लोग यहाँ आते हैं, यही तो है प्रत्यक्ष प्रमाण । दुनिया में कहीं भी कोई प्राचीन परम्परा चलती है तो उसके पीछे कोई न कोई कारण होता है, उसकी कोई शुरुआत होती है । इसी तरह ब्रज में पाँच हजार वर्ष प्राचीन इतनी बड़ी परम्परायें जो आज तक चल रही हैं, उसका कोई न कोई कारण है । प्राचीन ग्रन्थों के प्रमाण से फाल्गुन की नवमी तिथि के दिन वृषभानुनन्दिनी श्रीराधारानी के निज धाम बरसाना से ही अनुराग (प्रेम) की होली अबीर-गुलाल उड़ाने एवं पिचकारी के द्वारा रंग की वर्षा के माध्यम से सारे संसार में फैली । समग्र विश्व में इसका प्रारम्भ बरसाना से ही हुआ । पूर्णिमा को जो होलिका दहन होता है, उसकी कथा प्रह्लाद जी से जुडी हुई है । प्रह्लाद को उनकी बुआ होलिका जलाने के लिए आग में बैठी थी, इसलिए होलिका दहन की परम्परा प्रह्लाद जी से जुडी हुई है । परन्तु रंग भरी होली – अबीर-गुलाल उड़ाना, पिचकारी से रंग डालना, मुख पर रंग लगाना आदि की परम्परा का प्रारम्भ बरसाना से हुआ है । फाल्गुन मास की नवमी तिथि से श्रीजी के धाम बरसाना से सारे ब्रज में और सम्पूर्ण विश्व में रंग भरी होली खेलने का द्वार खुल जाता है । दुनिया में रंगभरी होली का प्रसार ब्रजभूमि से ही हुआ । ब्रज में श्रीराधा-माधव ने गोपाङ्गनाओं और गोपकुमारों के साथ जो होरी-लीला की, वह त्रिभुवन विख्यात है, यह ब्रज की शोभा है । ऐसी रसमयी होली केवल ब्रज में ही होती है, ब्रज के बाहर यह रस नहीं है । ब्रज की होली में कोई मर्यादा नहीं होती है । मर्यादा के संकुचित बन्धनों को तोड़कर विशुद्ध प्रेम रंग में रंगी होली का रस श्रीराधामाधव ने ब्रज में बहाया है और आज तक ब्रज के विभिन्न ग्रामों में परम्परानुसार श्रीराधा-माधव द्वारा द्वापर में खेली गयी होरी का ही अनुकरण ब्रजवासी आज भी अत्यन्त उत्साह और उमंग के साथ करते हैं, चाहे वह बरसाना-नन्दगाँव की लठामार होली हो अथवा जाव-बठैन की झामों की होली हो अथवा राल-भदार में झण्डी जीतने की होली हो अथवा दाऊ जी की रसभरी कोड़ामार होली हो । ब्रज की होली के अद्वितीय, विलक्षण और लोकातीत रस का पान करने के लिए बड़े-बड़े देवगण भी लालायित रहते हैं, तभी तो वल्लभ कुल के अष्टछाप के मूर्धन्य संत कवि नन्ददासजी ने लिखा है –

शेष महेश सुरेश न जानें, अज अजहूँ पछताँय । सो रस रमा तनक नहिं पायौ, जदपि पलोटत पाँय ॥

शेषजी, महादेवजी, इन्द्र, ब्रह्मा आदि देवगण आज तक पछताते हैं कि हम ब्रज में उत्पन्न नहीं हुए, अन्यथा हम भी ब्रज की रसमयी होरी-क्रीड़ा का रसास्वादन करते । ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी, वैकुण्ठ स्वामिनी, श्रीहरिवल्लभा लक्ष्मीजी, जो सदा ही श्रीहरि की चरण सेवा में संलग्न रहती हैं, उनको भी ब्रज की रंगभरी-रसभरी होरी का आस्वादन दुर्लभ है, फिर यह रस किसको मिलता है तो नन्ददासजी कहते हैं –

श्रीवृषभानुसुता पद अम्बुज, जिनके सदा सहाय । एहि रस मगन रहत निसि वासर, नन्ददास बलि जाय ॥

जिसके ऊपर रासरासेश्वरी, महाभाव स्वरूपा अनन्त करुणामयी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधारानी की कृपा हो जाती है, उसको इस देवदुर्लभ रसामृत का पान करने का सौभाग्य प्राप्त होता है, बाकी लोग इस रस से वञ्चित ही रहते हैं । चाहे ब्रह्मा बन जाओ, चाहे महादेव बन जाओ अथवा लक्ष्मी बन जाओ, बिना श्रीराधारानी की कृपा के यह रस किसी को नहीं मिल सकता है ।

राधासुधानिधि में श्रीजी के स्वभाव के बारे में कहा गया है – सर्वार्थसाररसवर्षिकृपार्द्रदृष्टे – वे राधारानी इतनी कृपामयी हैं कि कृपा के कारण उनके नेत्र सदा आर्द्र - भीगे बने रहते हैं, करुणा से गीले रहते हैं और उनके नेत्रों से क्या

बरसता है तो ग्रन्थकार बोले – सर्वार्थसाररसवर्षि – समस्त पुरुषार्थ जैसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का भी सार है प्रेम और उस प्रेम का भी सार है रस तो श्रीजी रस की वर्षा करने वाली हैं, उनके नेत्रों से रस बरसता है, जिनकी कृपामयी दृष्टि रस से भीगी रहती है । श्रीजी के नेत्रों में सदा कृपा रहती है और उस कृपा की सदैव वर्षा होती रहती है । उस कृपा का स्वभाव है बरसना, अतः वह निरन्तर बरसती रहती है । आँखें नहीं बरसतीं, आँखों में स्थित कृपा बरसती रहती है ।

ब्रज में फाल्गुन ही नहीं अपितु चैत्र तक के महीने में श्रीजी के द्वारा रस की वर्षा होरी और होरंगा के माध्यम से होती रहती है । ब्रज की होली क्या है ? वस्तुतः यह तो श्रीजी के नेत्रों में स्थित रस और कृपा की वर्षा है । **वैसे तो श्रीजी के कृपार्द्र (कृपा से भीगे) नेत्रों के द्वारा रस की वर्षा बारहों महीने, दिन-रात निरन्तर ही होती रहती है, अधिकारी ही नहीं अपितु सर्वथा अनधिकारी महाअधम, महापापी, अपराधी जीवों पर भी अनवरत बिना किसी भेद-भाव के होती रहती है परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रज में होरी के अवसर पर श्रीजी के द्वारा रस की विशेष वर्षा होती है । ब्रज में फाल्गुन की नवमी तिथि से ही होरी के रस की वर्षा का प्रारम्भ श्रीजी के निज धाम बरसाना से हो जाता है ।**

परम रसमय 'श्रीबरसाना धाम'

बाबाश्री द्वारा कथित श्रीराधासुधानिधि-सत्संग (३०/१/१९९९) से संकलित

रंगीली होली के दिन बरसाने के श्रीजी मन्दिर में प्रतिवर्ष एक पद गाया जाता है जिसमें यह वर्णन है कि ब्रज के अनेक गाँवों की गोपियाँ बरसाने में आयी हैं तथा पद के अंत में 'बरसाना' शब्द की व्युतपत्ति भी लिखी है । इस पद में बात यहाँ से शुरू होती है कि बरसाने में रस बरस रहा है । **'अति सरस बन्यो बरसानो जू ।'** एक तो होती है सरसता परन्तु बरसाने में अति सरसता है । **'राजत रमणीक रवानो जू । वृषभानु गोप जहाँ राजै जू । कीरति जाकी जग गाजै जू ।**

पद की उपरोक्त पंक्ति में श्लेष अलंकार है, श्लेष अलंकार में एक शब्द के दो अर्थ हो जाते हैं । इस पंक्ति में कहा गया है कि जब से राधा पैदा हुई तब से उनकी मैया कीर्ति रानी सारे जग में गाज रही हैं, जिनकी बेटी राधा हैं, उनकी कीर्ति में क्या संदेह है ? कीर्ति की कीर्ति फैल गयी या वृषभानु की कीर्ति फैल गयी । **'जहाँ मणिमय मंदिर सोहै जू ।'** रंगीली होली के रसमय अवसर पर यशोदा जी बरसाने में आती हैं । बरसाने में सर्वाधिक लीलास्थल हैं । वृषभानु महल में रानी कीर्ति के रनिवास में इस दिन बहुत अधिक हास-परिहास होता है । इस पद में इसका वर्णन है । यशोदाजी से बरसाने की गोपियाँ बात करती हैं, उनके साथ कृष्ण भी बैठे हैं । बड़ी सुंदर छवि है ।

ब्रज में बरसाने-नन्दगाँव के बीच एक बहुत दिव्य सम्बन्ध है और यह परम्परा आज तक चल रही है । एक बार किसी व्यक्ति ने परम पूज्य संत श्रीप्रियाशरण बाबा महाराज से पूछा - क्या ब्रज में ऐसा कोई प्रत्यक्ष प्रमाण है, जिससे यह विश्वास हो जाये कि यहाँ राधारानी और श्रीकृष्ण हैं । प्रत्यक्ष प्रमाण तो है आँखों से दिखायी देना और आँखों से कोई चीज दिखायी नहीं दे रही है । राधाकृष्ण के अवतार को तो हजारों वर्ष बीत गये, प्रत्यक्ष प्रमाण कुछ मालूम नहीं पड़ रहा है । इस प्रश्न का पूज्य श्रीप्रियाशरण जी महाराज ने बहुत सुन्दर उत्तर दिया क्योंकि वे बरसाने के सच्चे रसिक थे, इस भूमि के निष्ठा प्राप्त महापुरुष थे । प्रश्न करने वाले व्यक्ति से उन्होंने हँसते हुये कहा कि तुम्हारे पास अपने पिता के वास्तविक पिता होने का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण है ? शब्द प्रमाण से ही तो उन्हें पिता मानते हो, तुम्हारे कुटुम्ब वालों ने बताया, माता ने बताया कि तुम इनके पुत्र हो तब तुमने उन्हें अपना पिता माना । ऐसे ही तुमको समझना चाहिए कि वेद-शास्त्र, पुराणों में (सत्य वस्तु से सम्बन्धित) सभी बातें कही गयी हैं, उन पर तुम्हें विश्वास करना चाहिये, फिर भी मैं तुमको एक प्रत्यक्ष प्रमाण की बात भी बताता हूँ । आज भी बरसाने में रंगीली होली और राधाष्टमी के दिन लाखों लोग आते हैं । इसे तुम आँखों से स्वयं देखते हो । यही प्रत्यक्ष प्रमाण है । हजारों वर्षों से आज तक बरसाने-नन्दगाँव की परम्परा चल रही है कि राधारानी के विवाह के बाद से आज तक बरसाने की किसी बेटी का विवाह नन्दगाँव से नहीं किया गया । आज भी नन्दगाँव वाले जब बरसाने में आते हैं तो ससुराल के भाव से आते हैं और ससुराल के ही सम्बन्ध से परस्पर हास-परिहास होता है । नन्दगाँव वाले गाते हैं – 'बरसानो असल ससुराल, हमारो न्यारो नातो ।' असली ससुराल तो हमारी बरसाना

ही है । उसी भाव से आज तक बरसाने-नन्दगाँव का व्यवहार चल रहा है । सारी परम्परा आज तक वही चल रही है तो सोचो कि इसका क्या आधार है ? यही तो प्रत्यक्ष प्रमाण है ब्रज में राधा-कृष्ण के होने का, उस परम्परा को कोई तोड़ नहीं पाया । कलिकाल के प्रभाव से आधुनिक सभ्यता की अन्धी दौड़ के बावजूद भी बरसाने-नन्दगाँव के प्रेम सम्बन्ध का आज तक निर्वाह हो रहा है ।

श्रीराधिकारानी की लीला का प्रताप है कि आज भी साँकरीखोर की वार्धकी (बूढ़ी) लीला के दिन नन्दगाँव के ग्वालबाल आते हैं, वही भाव लेकर, नन्दलाला साँकरीखोर में ब्रजगोपियों को दधिदान के लिए रोकते हैं । सबसे बड़ी बात तो यह है कि यहाँ ब्रज में कृष्ण को कोई भगवान् नहीं मानता है । सम्पूर्ण विश्व से यहाँ एक अलग ही सृष्टि है, दिव्य धाम है, जहाँ भगवान् को भगवान् नहीं माना जाता, सम्बन्धी माना जाता है । यह शास्त्रसम्मत बात है और भगवान् से सम्बन्ध मानना ही सबसे बड़ी बात है । भगवान् को भगवान् मानने से ऊँची बात है कि हम उनको अपना सम्बन्धी मानें । कपिल भगवान् ने भी भागवत में माता देवहूति से कहा है कि यदि कोई मुझे अपना सम्बन्धी मान ले तो काल उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता है । **"न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः ।**
येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ॥" (श्रीभागवतजी ३/२५/३८)

यहाँ भगवान् को भगवान् नहीं माना जाता, यही इस बरसाने की विशेषता है कि भगवान् को अपना सम्बन्धी माना जाता है कि कृष्ण हमारा दामाद (मेहमान) है । गाली-गलौज के साथ उनका सम्मान किया जाता है । यह भगवान् की पूजा है । यहाँ इस रूप में भगवान् की पूजा की जाती है, ऐसा यह बरसाना है । एक पद की पंक्तियाँ जाने कब से गायी जा रही हैं, जिसमें श्यामसुन्दर साँकरी खोर की दधिदानलीला में कहते हैं – **'ए हो दह्यो तो तुम लिये जाति कहाँ को ।'**

जिस दिन साँकरीखोर पर मटकी फूटती है, यह कड़ी आज भी गायी जाती है । चिकसौली से दही की मटकी आती है । नन्दलाल गोपी से पूछते हैं कि दही लेकर तुम कहाँ जा रही हो, यह दही तो मुझे दे जाओ । उत्तर में गोपियाँ इस प्रकार बोलती हैं, ऐसा नहीं कहतीं कि तुम भगवान् हो, ब्रह्म हो, लो महाराज, मटकी लेकर दही खा लो । भोग लगाकर हमें कृतार्थ कर दो । ऐसा कुछ नहीं है । यहाँ बरसाने में तो श्रीकृष्ण को सम्बन्धी माना गया है और वह बड़ा सरस सम्बन्धी है । इसलिए उसे गाली सुनायी जाती है, उसके साथ हास-परिहास किया जाता है । सम्बन्ध के अनुसार उनका ऐसा ही सम्मान होता है । दधिदान माँगने पर गोपियाँ कहती हैं – **'ए हो, ऐसो जो कहत मानो याही के बबा को ।'** ये तो ऐसे माँग रहा है जैसे दही इसके बाप का हो । विचार कीजिये, भगवान् की बरसाने में यह हालत है । भगवान् दही माँग रहा है तो यहाँ की गोपियाँ उससे कहती हैं कि क्या दही तेरे बाप को है । बाप ही नहीं, बाप के बाप, बाबा को है ।

यह कैसी भूमि है ? यह ऐसी भूमि है, जिसमें वह परब्रह्म परमेश्वर, जो विश्व में सर्वोच्च, सर्वपूज्य था, इस बात को हटाकर – 'यह तो हमारा सम्बन्धी है' - एक यही भाव रह गया । इस बात को आप ऐसे समझिये कि जब भारत का राष्ट्रपति २६ जनवरी को देश की राजधानी में गणतन्त्र दिवस समारोह में राष्ट्र प्रमुख के रूप में जाता है तो उनकी पत्नी भी साथ में होती हैं । पति राष्ट्रपति है तो पत्नी भी उनके साथ बैठती है, क्योंकि उनका सम्बन्ध है । पत्नी चाहे कितनी भी अयोग्य हो, अनपढ़ हो किन्तु सम्बन्ध के कारण उसका भी सम्मान होता है । अतः संसार में भी देखा जाता है कि सम्बन्ध के कारण मनुष्य पूज्य बन जाता है । इसी प्रकार जब भगवान् के साथ मनुष्य का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तो काल की क्या हिम्मत है, जो उसका कुछ बिगाड़ सके । काल तो उधर झाँक ही नहीं सकता । (भागवत - ३/२५/३८) जिसका सम्बन्ध भगवान् से जुड़ गया, कोई भी सम्बन्ध जुड़ गया चाहे भगवान् सखा बन गया, पुत्र बन गया, गुरु बन गया, सुहृद (नातेदार-रिश्तेदार) बन गया अथवा किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित हो गया । सम्बन्ध के कारण ही वृषभानु भवन में किसी उत्सव के समय, विशेषकर होलिकोत्सव में, 'श्रीकृष्ण' यशोदा मैया के साथ बैठे हैं । बरसाने की गोपियाँ पहले तो यशोदाजी को वस्त्र आदि ओढ़ाकर, भेंट देकर सम्मान करती हैं, फिर पूछती हैं - यशोदा रानी ! एक बात बताओ, आप हमारी नातेदार हो, इसलिए एक बात हम पूछती हैं – 'पति साधु परम तुम पायो जू ।' आपके पति नन्दबाबा परम साधु

हैं, इस बात को सारा संसार जानता है कि नन्दबाबा चोर नहीं, छिनट्ट (परस्त्रीगामी) नहीं, वे तो परम सदाचारी और ब्रज के बड़े ही उदार दाता हैं परन्तु हमारा प्रश्न यह है कि 'यह पूत कहाँ ते जायो जू ।' यह पुत्र आपको कहाँ से प्राप्त हुआ ?

अब प्रश्न ऐसा था कि यशोदाजी क्या कहतीं ? तब तक बरसाने की गोपियों ने और कहा कि हमने आपसे ऐसा इसलिए पूछा क्योंकि **'यह मिलै न कुलै तिहारे जू । याके रंग रूप निहारो जू ।'** इस बालक का रंग तो देखो । तुम तो गोरी हो, नन्द बाबा भी गोरे हैं । आप दोनों का रंग-रूप देख लिया हमने किन्तु आपके बालक का रंग कैसा है ? यह सब देखकर कहना पड़ता है कि **'यह मिलै न कुलै तिहारे जू ।'** तब तक एक अन्य गोपी बोली - **'औरऊ शंका एक आवै जू ।'**

यशोदा जी ! आप बुरा मत मानना कि ऐसी बात ये बरसाने वाली क्यों पूछ रही हैं ? आप स्वयं ही सोच लो – **'जब गर्ग तिहारे आयो जू ।'** हमने सुना है कि जब आपके यहाँ कृष्ण का जन्म हुआ तो गर्ग ऋषि आये नामकरण करने के लिए । यह बात भागवत और अन्य पुराणों में लिखी है कि गर्गजी कृष्ण का नामकरण करने नन्द बाबा के यहाँ पधारे थे । उस समय गर्गजी ने कहा था – **आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः । शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ।**

प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः । वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः सम्प्रचक्षते । (श्रीभागवतजी १०/८/१३)

इस समय यह कृष्ण है कृष्णता को प्राप्त करने के कारण और कभी इसने वसुदेव के यहाँ भी जन्म लिया था, इसलिए इसे लोग वासुदेव भी कहेंगे । इसीलिए बरसाने की गोपियाँ यशोदाजी से कहती हैं कि जब गर्गजी आपके यहाँ आये तो उन्होंने कहा था कि यह वसुदेव का पुत्र है । गर्गऋषि तो त्रिकालज्ञ हैं, तीनों कालों की जानने वाले हैं, जिन्होंने ज्योतिषशास्त्र की रचना की और जिनकी अद्भुत महिमा है । आचार्यों ने इस बात को लिखा है कि जो उद्धवजी की इच्छा थी – **आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।** (श्रीभागवतजी १०/४७/६१)

मुझे ब्रज की लता बना दो, जिससे गोपियों की चरण रज मिल जाये । उद्धवजी की यह इच्छा पूरी हुई गोवर्धन में, जहाँ उद्धवकुण्ड के पास वे लता के रूप में आज भी विराजमान हैं । भागवत में उद्धवजी के इस प्रसंग का वर्णन स्कन्द पुराण में किया गया है कि श्रीकृष्ण के स्वधामगमन के बाद द्वारका की रानियाँ जब ब्रज में आयीं तो यमुना जी के कहने से गोवर्धन में कुसुमसरोवर के निकट लता-पता के रूप में उद्धव जी से उनकी भेंट हुई । आचार्यों ने यह बताया कि भागवत में उद्धवजी की अभिलाषा लता बनने की जो पूर्ण हुई, उसका स्कन्द पुराण में वर्णन है तो आचार्य ही ऐसे होते हैं जो एक पुराण का सम्बन्ध दुसरे पुराण से जोड़ते हैं । हम लोग इसे नहीं समझ सकते क्योंकि हम लोग तो अज्ञानी हैं । इसी प्रकार भागवत में ब्रह्माजी ने श्रीकृष्ण की स्तुति करते समय यह प्रार्थना की कि मुझे ब्रज में तिरछी योनि में जन्म मिल जाये । तिरछी योनि का अर्थ है जड़ योनि । भागवत में ब्रह्माजी की इस प्रार्थना का रहस्य पद्म पुराण और वाराह पुराण में खोला गया है । वाराह पुराण में लिखा है – **"पुराकृतयुगस्यान्ते ब्रह्मणा प्रार्थितो हरिः । ममोपरि सदा त्वं हि रासक्रीडां करिष्यसि ॥"** सतयुग में जब ब्रह्माजी को पता चला कि श्यामसुन्दर गोपियों के साथ ब्रज में रस की वर्षा करेंगे तो ब्रह्माजी ने पहले से रिजर्वेशन (आरक्षण) करा लिया जैसे किसी को बम्बई से मथुरा आना है तो बहुत पहले से ही वह रिजर्वेशन रेलगाड़ी के लिए करा लेता है ताकि ऐन वक्त पर रिजर्वेशन मिले कि न मिले । सतयुग के अन्त में ब्रह्माजी ने भगवान् से प्रार्थना की । सतयुग के कई लाखों वर्षों बाद द्वापर के अन्त में श्रीकृष्ण का अवतार होने को था । सतयुग १७ लाख वर्षों के लगभग होता है, त्रेता १२ लाख वर्षों के आसपास होता है, द्वापर लगभग आठ लाख वर्ष का होता है । सतयुग के अन्त में ब्रह्माजी ने तपस्या की, उनके सामने भगवान् कृष्ण प्रकट हुये और पूछा - ब्रह्माजी ! आप क्या चाहते हैं ? ब्रह्माजी बोले – हे प्रभो ! द्वापरान्त में ब्रज में आपकी रसमयी लीला होने वाली है, मैं भी उसका दर्शन करना चाहता हूँ । भगवान् हँसने लगे क्योंकि ब्रह्माजी जिस रासलीला का रसास्वादन करना चाह रहे थे, उसमें पुरुष का तो अधिकार ही नहीं है, महादेवजी को भी इसके लिए गोपी बनना पड़ा । ब्रह्माजी ने श्यामसुन्दर से यह भी कहा कि केवल आप ही नहीं बल्कि जितनी भी गोपिकायें हैं, उन सबके चरण मेरे ऊपर पड़े । **'सर्वाभिर्ब्रजगोपीभिः प्रावृट्काले कृतार्थकृत ।'** किसी पुराण में लिखा है कि एक बार ब्रह्माजी ने साठ हजार वर्षों तक तपस्या की परन्तु उन्हें गोपियों की

चरणरज नहीं मिली । जब ब्रह्माजी ने समस्त ब्रज गोपिकायों की चरणरज माँगी तो श्यामसुन्दर चक्कर में पड़ गये और सोचने लगे कि गोपिकायें तो राधारानी की कायव्यूह रूपा हैं, यह विभाग तो श्रीजी का है, ब्रह्मा ने मुझसे ये क्या माँग लिया, और कुछ माँगते तो मैं दे देता, सख्यरस पाना चाहते तो मैं नन्दगाँव में उन्हें बसा देता किन्तु ये तो रास में प्रवेश करना चाहते हैं और सहचरियों की चरणरज के अभिलाषी हैं । ब्रह्माजी ने वरदान माँगते समय सोचा था कि यदि मैं प्रभु से कहूँ कि आप मुझे राधारानी का दर्शन करा दो तो यह ठीक नहीं है लेकिन ऐसा कुछ दाँव मारना चाहिए कि उसमें सब कुछ एक साथ आ जाये । श्यामसुन्दर ने कहा – ब्रह्माजी ! आप ब्रज में चले जाइए । ब्रह्माजी सोचने लगे कि ब्रज तो बहुत बड़ा है । गोवर्धन भी ब्रज है, चीरघाट भी ब्रज है, नन्दगाँव, कामवन, वृन्दावन, गोकुल आदि सब ब्रज ही है, मैं कहाँ जाऊँ ? श्यामसुन्दर बोले – आप बरसाना जाओ । 'ततो ब्रह्मन् ब्रजं गत्वा वृषभानुपुरे स्थिताः ।' भगवान् समझ गये कि ब्रह्माजी समस्त गोपियों की चरणरज पाना चाहते हैं तो वह राधारानी की कृपा के बिना सम्भव नहीं है । श्रीजी की कृपा के बिना तो किसी एक गोपी की चरणरज भी नहीं मिल सकती है । इसीलिए श्यामसुन्दर ने कहा – ब्रह्माजी ! आप वृषभानुपुर (बरसाना) चले जाओ और वहाँ पर्वत जाना । श्यामसुन्दर ने बड़ी चतुराई की बात बता दी क्योंकि बरसाने में तो श्रीजी के सामने हाजिरी देने सारे ब्रज की गोपिकायें आयेंगी । बरसाना ऐसा स्थान है, जहाँ बिना बुलाये समस्त गोपिकाएँ पहुँच जाती हैं, बिना निमन्त्रण के स्वयं श्यामसुन्दर वहाँ पहुँच जाते हैं । इस प्रकार भगवान् के आदेश से ब्रह्माजी बरसाने में आकर पर्वत बन गये और इस पर्वत का नाम है ब्रह्माचल पर्वत । इसीलिए श्रीजी मन्दिर के सिंहपौर पर ब्रह्माजी की एक प्रतिमा भी स्थापित है । यहाँ पर्वत बनने पर ब्रह्माजी को श्रीजी और समस्त गोपिकाओं की चरणरज प्राप्त हुई, यह वाराहपुराण और पद्मपुराण में वर्णित है । 'बरसाना' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है कि वर्षाणा (जहाँ रस की सदा वर्षा होती है) का अपभ्रंश ही बरसाना हो गया । अस्तु, जब रंगीली होली के अवसर पर बरसाने में यहाँ की गोपियों के द्वारा यशोदाजी से पूछा गया कि आप और नन्दबाबा गौर वर्ण के हैं तो आपका पुत्र साँवरा कैसे हो गया ? छोटे से कन्हैया भी अपनी माँ के साथ बैठे नीचे मुँह कर मुस्कुराने लगे । मैया पर गाली पड़ रही है और श्यामसुन्दर मुस्कुरा रहे हैं, ऐसा है यह बरसाना । इसीलिए रसिक महापुरुषों ने गाया – 'यह रस बरसै बरसानो जू । बिनु कुँवरि कृपा को जानै जू ।' अंत में रसिकजन कहते हैं कि हमने इस पद में सम्बन्धियों की लीला गाई है, कृष्ण लीला नहीं गाई है और इसका फल यह है कि हमें ब्रजवास मिल गया । ब्रजलीला में सम्बन्धी गोपी-ग्वाल कृष्ण से बड़े हैं । 'कीरति-जसुमति जस गायो जू ।' इस पद को गाने का फल क्या है ? 'ब्रजवास माधुरी पायो जू । अति सरस बस्यो बरसानो जू । राजत रमणीक रवानो जू ।' पुराणों में यह भी वर्णन मिलता है कि बरसाने का एक नाम है बरसानु, सानु का अर्थ है पर्वत की चोटी । बरसाने के ब्रह्माचल पर्वत की चोटी सारे ब्रज में सबसे सुन्दर और मीठी है । यद्यपि नन्दगाँव में शिवजी भी नन्दीश्वर पर्वत बने हैं, इसी प्रकार गिरिराज गोवर्धन हैं तथा बरसाने के आसपास सखीगिरि पर्वत है । आदिबद्री में रोहिताचल, नर-नारायण, गन्धमादन आदि बहुत से पर्वत एक साथ हैं परन्तु जो सुन्दरता, जो मिठास बरसाने के ब्रह्माचल पर्वत की चोटी में है, यहाँ के दृश्य में है, वह ब्रज में अन्यत्र कहीं नहीं है । इसीलिए बरसाने का एक नाम है 'बरसानु' । हित हरिवंश महाप्रभु के राधावल्लभ सम्प्रदाय के अनन्य रसिक आचार्य चाचा वृन्दावन दास जी के द्वारा रचित एक ग्रन्थ है – 'ब्रज प्रेमानन्द सागर ।' इस ग्रन्थ में ब्रह्माचल पर्वत पर हुई एक लीला का वर्णन है कि दीपावली के अवसर पर किशोरी जी वृषभानु महल के सिंहपौर पर बैठी हुई हैं और उनके साथ ललिता, विशाखा आदि अष्ट सखियाँ भी बैठी हैं । इन अष्ट सखियों में भी प्रत्येक की अलग-अलग अष्ट सखियाँ हैं । इस प्रकार सम्पूर्ण सखी परिकर श्रीजी के साथ विराजित है । रात के समय सखियाँ श्रीजी से कहती हैं – 'आप पहचानो, ये कौन-कौन से गाँव दिखाई दे रहे हैं ?' दीपावली के अवसर पर हर गाँव में प्रत्येक घर में दीपक जल रहे हैं । सखियों के पूछने पर श्रीजी कहती हैं – वह गिरिराजजी है, वहाँ की दीप ज्योति चमक रही है । वह वृन्दावन है । ब्रह्माचल पर्वत की शिखर से वृन्दावन तक दिखाई पड़ रहा था । अनेक गाँवों को पहचानते हुए श्रीजी कहती हैं – यह 'सहार' है । (सहार नन्द बाबा के भाई उपनन्द जी की राजधानी है ।)

मंगलकारी महोत्सव 'कथा-कीर्तन'

श्रीबाबामहाराज के संध्याकालीन सत्संग '२८ जनवरी, २०१२' से संकलित

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥ (श्रीभागवतजी ५/१९/२४)

'कथासुधापगा' – सुधा यानि अमृत, 'अपगा' – नदी । जहाँ भगवान् के कथामृत की नदी नहीं बहती है । जहाँ भगवान् के आश्रित सन्त नहीं रहते हैं, 'यज्ञेश' – भगवान्, 'मख' – यज्ञ, 'महोत्सव' – महान उत्सव । कीर्तन और नृत्य महोत्सव है । 'भगवन्नाम' ही सबसे बड़ा यज्ञ है । श्रीमद्भागवत के इस श्लोक में स्वयं देवगण कहते हैं कि जहाँ भगवत्कथामृत की नदी नहीं प्रवाहित होती है, जहाँ एकमात्र भगवान् के ही आश्रित सन्त-भक्त निवास नहीं करते एवं जहाँ भगवान् के संकीर्तन यज्ञ का महोत्सव नहीं है, ऐसा स्थान चाहे सुरेश अर्थात् देवराज इन्द्र का लोक हो अथवा इन्द्र आदि समस्त देवगणों के भी स्वामी ब्रह्माजी का ही लोक क्यों न हो, वहाँ नहीं रहना चाहिए । इस श्लोक का भाव यह है कि जहाँ सत्संग अथवा कथा वर्ष या महीने में एक बार हो गया, ऐसा नहीं है । कथासुधापगा – कथा अमृत है, अपगा का अर्थ है नदी । जहाँ कथा अमृत की नदी नहीं बहती है जैसे नदी बारहों महीने बहती है, इसी प्रकार जिस स्थान पर कथा अमृत की सरिता प्रतिदिन नहीं प्रवाहित होती है, वहाँ मत रहो । इसके अतिरिक्त जहाँ केवल मात्र भगवान् के ही आश्रित सन्त-भक्त न रहते हों, वहाँ भी मत रहो । उदाहरण के तौर पर आधुनिक काल के बहुत से आश्रमों में धन का आश्रय लेने वाले वेषधारी लोग रहते हैं और कहते हैं कि हमारे स्थान में साधु-वैष्णवों को इतनी दक्षिणा मिलती है । भागवत के उपरोक्त श्लोक के अनुसार पैसे के लोभ में जहाँ लोग रहते हों, वहाँ मत रहो तथा जहाँ यज्ञेश अर्थात् भगवान् के मख यानि नाम संकीर्तन यज्ञ का प्रतिदिन महोत्सव नहीं होता हो, वहाँ भी मत रहो । जहाँ भक्त लोग गान करते हैं, नृत्य करते हैं, वह उत्सव है, महोत्सव अर्थात् महान उत्सव है । ऐसा रस जहाँ बह रहा है, बढ़ रहा है, वहाँ रहना चाहिए । मान मन्दिर के संकीर्तन भवन रस मण्डप में प्रतिदिन यह उत्सव आयोजित होता है । श्रीमद्भागवत के अनुसार विशेष उत्साह के साथ जहाँ भगवन्नाम संकीर्तन यज्ञ नहीं होता तो तुमको यदि इन्द्रलोक में भी वास मिल जाये तो वहाँ मत रहो । इन्द्र भवन में तुम्हारी सीट रिजर्व हो जाए तो भी उसको छोड़ दो क्योंकि वहाँ रहने पर तुम भगवान् से विमुख हो जाओगे । इसलिए ऐसे ही स्थान में रहना चाहिए, जहाँ हर समय भगवान् का महोत्सव है । राधारानी की दया है कि मान मन्दिर में ये तीनों ही बातें हैं । यहाँ के रसमण्डप में प्रतिदिन होने वाले संकीर्तन यज्ञ में सम्मिलित होने वाली आराधिकायें तथा गुरुकुल के बच्चे सच्चे सन्त हैं । ये लोभी नहीं हैं, न तो ये दक्षिणा के लोभी हैं, न धन के, न पंगत के और न ही अपने नाम-यश व मान-सम्मान के लोभी हैं । इन्हें किसी बात का लोभ नहीं है । ये लोग भगवान् के आश्रय में ही यहाँ पड़े हैं । मान मन्दिर में नित्य ही कथा हो रही है और नित्य ही संकीर्तन के रूप में महोत्सव हो रहा है । श्रीजी की कृपा से सारी बातें एक साथ मिल गयी हैं ।

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने संकीर्तन में नृत्य को प्रधानता दी है । नृत्य के कारण ही संकीर्तन महोत्सव बन जाता है अन्यथा उत्सव नहीं बनता । कथा हो रही है ठीक है, सत्संग हो रहा है ठीक है किन्तु यज्ञेश भगवान् का महोत्सव तभी बनता है जब उसमें गान, नृत्य, संगीत आदि का समावेश होता है, तब उत्सव बन जाता है । जहाँ तीन बातें – कथा, भगवान् के आश्रित उपासक तथा संकीर्तन उत्सव नित्य ही हो, वहीं रहना है, यह बड़ी सूक्ष्म बात है अर्थात् रस की वृद्धि हो तो हृदय में रस बढ़ेगा । भगवान् ने स्वयं कहा है –

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च । मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।

भगवान् ने बहुत बड़ी बात कही है कि न तो मैं वैकुण्ठ में रहता हूँ । वैकुण्ठ अर्थात् धाम में, यद्यपि धाम में उनका नित्य निवास है किन्तु भगवान् कहते हैं कि मैं वहाँ नहीं रहता हूँ, योगियों के हृदय में भी नहीं रहता हूँ । फिर कहाँ रहते हैं ? जहाँ मेरे भक्त गाते हैं, वहीं मैं रहता हूँ । स्कन्द पुराणोक्त श्रीमद्भागवत माहात्म्य में यमुनाजी ने उद्धव जी को उत्सव

रूप बताया है । आत्मोत्सवरूपत्वं हरिणा तस्मै समर्पितं नियतम् – (भा.मा. २/२५) । भगवान् ने उद्धव जी को उत्सव रूप प्रदान किया है । क्यों ? उद्धवजी जहाँ रहते हैं, वहाँ संकीर्तन, गान, कथा, नृत्य – ये सब होता रहता है । इसीलिए उनको उत्सव रूप माना गया है । श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि जहाँ ऐसे भक्त रहते हैं, वह संसार का सबसे बड़ा तीर्थ है, सबसे पवित्र स्थल है । स वै पुण्यतमो देशः सत्पात्रं यत्र लभ्यते । (भा.७/१४/२८) भागवत के सातवें स्कन्ध के चौदहवें अध्याय में गंगा, गोदावरी, कावेरी, काशी, प्रयाग इत्यादि बहुत से तीर्थों का वर्णन किया गया है । उन सबका वर्णन करने के बाद कह दिया गया है – एते पुण्यतमा देशा हरेरर्चाश्रिताश्च ये । (भा. ७/१४/३३) सबसे उत्तम स्थान वही है, जहाँ सत्पात्र लोग रहते हैं । जहाँ भगवद् आराधना होती है, गान होता है, नृत्य होता है, वह संसार का सबसे बड़ा तीर्थ है, सबसे बड़ा पवित्र स्थल है । भागवत के प्रारम्भ में भी यही बात कही गयी है –

शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः । स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात् ॥

श्रृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः । हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥ (श्रीभागवतजी १/२/१७)

पुण्यतीर्थ का अर्थ है भगवद्धाम । तीर्थ तो सभी हैं लेकिन पुण्यतीर्थ अर्थात् पुण्यजन यानि भक्तजन जहाँ रहते हैं, वहाँ जाओ, भगवद्धाम में रहो और ऐसे मत रहना । शुश्रूषोः – सेवापरायण होकर रहना, 'श्रद्दधानस्य' – श्रद्धा के साथ रहना, महापुरुषों की सेवा करना - स्यान्महत्सेवया विप्राः । एक तो भगवद्भक्त मिल जायें, साथ ही पुण्यतीर्थ भगवद्धाम मिल जाए, उनकी सेवा मिल जाए फिर बिना कहे प्रभु तुम्हारे हृदय में आ जायेंगे - श्रण्वतां स्वकथा कृष्णः – तुम वहाँ कृष्ण चरित्र, कृष्ण गान, कृष्ण लीला सुनोगे, गान-नृत्यादि के साथ रस हो ।

इसी प्रसंग में श्रीबाबा महाराज बताते हैं कि मेरे सामने ही वृन्दावन में इस्कॉन का मन्दिर बना । यह बहुत प्राचीन मन्दिर नहीं है लेकिन महोत्सव के कारण, गान-नृत्य आदि रस के कारण वहाँ वृन्दावन के अन्य प्राचीन मन्दिरों से अधिक श्री आ गयी । वल्लभ कुल के मन्दिरों में भी बड़ा ऐश्वर्य है क्योंकि वहाँ राग पहले, भोग पीछे है । यद्यपि वहाँ नाम संकीर्तन का प्राधान्य तो नहीं है लेकिन गुण कीर्तन, लीला कीर्तन करने वाला वल्लभ कुल के प्रत्येक मन्दिर में रहता है । उसको कीर्तनिया कहते हैं । यद्यपि वहाँ गान करने वाले निष्काम भक्त अब तो नहीं हैं, वेतन भोगी कीर्तनिया होते हैं और वे थोड़ी देर के लिए अपनी नियम पद्धति का पालन करके चले जाते हैं परन्तु फिर भी कीर्तन तो वहाँ होता ही है । इसीलिए अन्य मन्दिरों की अपेक्षा वहाँ भी ऐश्वर्य है, श्री है । ऐश्वर्य से मतलब धन-सम्पत्ति से नहीं है किन्तु श्री है वल्लभकुल के मन्दिरों में । जो रसरूपा भक्ति है, उसके कारण जीव को भगवद् गान एवं भगवान् के समक्ष नृत्य करने से रसानुभूति होती है । चैतन्य महाप्रभु नृत्य की महिमा बताते हुए पुराण के इस श्लोक को प्रायः कहते थे –

यो हि नृत्यति प्रहृष्टात्मा भावैर्बहुसुभक्तितः । स निर्दहति पापानि कल्पान्तर शतेश्वपि ॥ (श्रीपद्मपुराण)

जो कीर्तन में प्रसन्न होकर नाचता है, उसके सैकड़ों कल्पों के पाप उसी समय जल जाते हैं । एक कल्प की अवधि है - ४ अरब, २९ करोड़, ४० लाख, ८० हजार वर्ष । इतना बड़ा ब्रह्मा जी का एक दिन होता है । चैतन्य महाप्रभु शास्त्र का प्रमाण देकर कहते हैं कि भगवान् के लिए नृत्य करने से सैकड़ों कल्पों के पाप जल जाते हैं । नृत्य युक्त संकीर्तन इतनी महत्वपूर्ण रस भरी आराधना है । यह सर्वत्र (सब जगह) नहीं है जबकि ऐसी प्रभावशाली रसमयी आराधना सर्वत्र होनी चाहिए । इस सम्बन्ध में पद्म पुराण में एक अन्य श्लोक है – **"पद्भ्यां भूमेर्दिशोदृग्भ्यां दोर्भ्यां चामङ्गलमं दिवः । बहुधोत्सार्यते राजन् कृष्ण भक्तस्य नृत्यतः ॥"** श्रीकृष्ण भक्त नृत्य करता है तो उसके पाँवों के ठुमके अर्थात् नृत्य करते समय उसके चरण पृथ्वी पर जब पड़ते हैं तो सारी पृथ्वी के पाप जल जाते हैं । नृत्य करते समय जब वह आँख उठाकर देखता है तो दिशाओं में जो पाप हो रहे हैं, वे भी जल जाते हैं, दोर्भ्यां चामङ्गलमं दिवा – जब नृत्य करते समय भुजाओं को उठाता है तो अन्तरिक्ष में, आकाश में, जहाँ-जहाँ भी अशुभ कर्म हो रहे हैं, वे नष्ट हो जाते हैं । 'बहुधोत्सार्यते राजन् कृष्ण भक्तस्य नृत्यतः' – नृत्य करने से सम्पूर्ण पृथ्वी, सम्पूर्ण दिशाओं के पाप नष्ट होने से सर्वत्र मंगल ही मंगल होता है । इसीलिए श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि जहाँ यज्ञेश भगवान् का महोत्सव है, वहाँ ही रहो । श्रीबाबा महाराज अपने ब्रजवास

का अनुभव बताते हैं कि जब मैं पहली बार ६०-७० वर्ष पूर्व बरसाने में आया तो उस समय मान मन्दिर में केवल चोर-डाकू ही रहते थे । उनका ऐसा आतंक था कि कोई भय के कारण दोपहर में भी मान मन्दिर में नहीं प्रवेश कर सकता था । जब मैं मन्दिर के भीतर गया तो देखा कि जहाँ ठाकुरजी के विराजने का स्थल था, वहाँ ठाकुरजी तो थे नहीं, उस स्थान के पिछले हिस्से में खून के गहरे धब्बे पड़े थे । जाने कैसी-कैसी भयंकर घटनाएँ यहाँ होती थीं । कुछ संत यहाँ रहने के लिए आये तो बोले कि दिखाई तो नहीं पड़ता लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि कोई हमारी छाती पर चढ़ गया हो यानि प्रेतात्माओं का भी यह स्थल था । श्रीबाबा दैन्यवश कहते हैं कि हम जब से मान मन्दिर में आये हैं, यद्यपि मेरे अंदर भक्ति तो नहीं है लेकिन हमने मान मन्दिर के तामसी वातावरण के समूल विनाश और ब्रजवासियों के कल्याण के लिए संकीर्तन का शुभारम्भ किया । उस कीर्तन में नृत्य अनिवार्य रूप से होता था । मानपुर और चिकसौली गाँवों के ब्रजवासी उस संकीर्तन में सम्मिलित होने लगे, नृत्य होने लगा । मीराजी के शब्दों में इस रसीली भक्ति के प्रभाव से चोर-डाकू, भूत-प्रेत, विषैले सर्प आदि सभी तमोगुणी जीव भाग गये । पूर्व का वही भयानक मान मन्दिर वर्तमान में केवल ब्रज का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष में रस का महत्वपूर्ण स्थल, रस का मुख्य केंद्र बन गया है और इसी रसीली भक्ति के प्रभाव से असम्भव से प्रतीत होने वाले ब्रज के लीला स्थलों के संरक्षण के कार्य सम्भव हुए । यह सब केवल श्रीजी की कृपा से ही सम्भव हो सका है । हमें ऐसे ब्रजवासी मिल गये, ऐसे सन्त-भक्त मिल गये, ऐसी आराधिकाओं का मान मन्दिर में प्रवेश हुआ, जो इस रस युक्त संकीर्तन महोत्सव में नित्य ही सहयोग करते हैं । पहले मान मन्दिर में ऐसे बहुत से पुरुष साधक रहते थे, जो संकीर्तन आराधना में सहयोग करते थे परन्तु आगे चलकर संकीर्तन आराधना का विरोध करने वाले लोगों के कुसंग के दुष्प्रभाव से वे यहाँ से चले गये तो श्रीजी की कृपा से सैकड़ों दिव्य बालिकायें प्रकट हो गईं और इनके कारण आज भी नृत्य-गान युक्त संकीर्तन का दिव्य रस श्रीजी के करकमलों से निर्मित गह्वरवन के रसमण्डप में प्रतिदिन प्रवाहित होता है । इस अलौकिक रस युक्त महोत्सव में छोटे-छोटे बच्चों की भी रुचि हो जाती है और इसमें रुचि होना ही एक बहुत बड़ी उपलब्धि है । श्रीरूपगोस्वामीपाद ने अपने ग्रन्थ भक्तिरसामृत सिन्धु में भगवत्प्रेम प्राप्ति के ये क्रम अथवा सीढ़ियों का उल्लेख किया है – **"आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजन-क्रिया, ततोऽनर्थ निवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः । अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति, साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः ॥"** पहले मनुष्य के भीतर श्रद्धा होती है, श्रद्धा उत्पन्न होने पर वह साधुसंग करता है, सच्चे संत के सत्संग के प्रभाव से वह यथार्थ भजन को सीखता है । यथार्थ भजन क्रिया अर्थात् रसमयी संकीर्तन आराधना को सच्चे सन्त से सीखकर फिर उसे करने से अनर्थ निवृत्ति होती है अर्थात् भक्ति पथ में बाधक जितने भी अवगुण हैं, धीरे-धीरे ये नष्ट होते हैं । अनर्थों के नष्ट होने पर ही निष्ठा होती है और निष्ठा के बाद रुचि उत्पन्न होती है । रुचि हो गयी तो फिर भक्ति की अंतिम सीढ़ी अपने-आप मिल जायेगी और उसके बाद तो आगे का रास्ता खुला हुआ है, भगवान् और उनसे सम्बन्धित सभी चीजों में आसक्ति हो जाएगी, भाव हो जायेगा और भावोदय के बाद अंतिम लक्ष्य भगवत्प्रेम की प्राप्ति हो जायेगी । इस तरह भक्ति की सभी सीढ़ियों की प्राप्ति हो जाएगी । भक्ति के साधनों में रुचि हो जाए इसीलिए आचार्यों ने गान-नृत्यादि का समागम किया है । जो नीरस लोग होते हैं, जिनको रस से कोई मतलब नहीं, वे संकीर्तन में न तो आते हैं और न ही उनकी उसमें कोई रुचि होती है परन्तु मैंने देखा है कि गान और नृत्य युक्त संकीर्तन आराधना में छोटे-छोटे बच्चों की भी रुचि हो जाती है ।

ऐसी होरी तेरी कैसी होरी हाय मची ||

अबही तो मैं ब्रज में आई, या ब्रज रीति मैं जान न पाई,
तोते जान ना पहिचान मैं हूँ नारी अनजान, कैसे बीच डगर में फाग रची |
मैं हूँ बेटी बड़े घरन की, नयी ब्याहुली मैं लाजन की
मेरी चूनर छापेदार मेरी सारी जरतार, हटो छाँड़ो लंगराई मोहे नांय जची |
मोहन नैनन तीर चलावै, घूँघट चीर जिया बिंध जावै
मरे नैनन तीर ऐसे लागे समसीर, हटो चल्यो नहिं जावै मेरी कमर लची ||

वास्तविक भक्ति 'सतत्-स्मरण'

भगवद्धाम में रहने का बस यही सबसे बड़ा लाभ है कि यहाँ सर्वत्र कथा-कीर्तन की आवाज सुनाई पड़ने से कल्याण अपने आप ही हो जाता है । श्रीबाबा मान मन्दिर में रह रहे एक नवागन्तुक व्यक्ति के बारे में बताते हैं कि एक सज्जन मेरे पास एक कागज लेकर आये और बोले कि मैं अपना घर छोड़कर यहाँ आया, अब मेरी वापस घर जाने की इच्छा नहीं होती है किन्तु जब मुझे अपने बेटे की याद आती है तो मैं दुःखी हो जाता हूँ । इस दुःख को दूर करने का क्या उपाय है ? मैंने उन्हें बताया कि इस दुःख को दूर करने का यही उपाय है कि तुम यहाँ भी अकेले में मत रहो । अकेलेपन में तुम्हें अपने बेटे की याद आती है । गौशाला में चले जाया करो, वहाँ गायों की सेवा के लिए कीर्तन किया जाता है, तुम भी वहाँ कीर्तन किया करो । संध्या को यहाँ की गान-नृत्य युक्त सरस संकीर्तन आराधना में आया करो । गान-नृत्य युक्त रसमय भजन में मन को लगाओ । अपने आप संसार की सब आसक्ति छूट जायेगी । हमारे मन्दिर के छोटे-छोटे बच्चे इसी रसमय उपासना के कारण अपने माँ-बाप को भूल गये हैं । इनके लिए मैंने कुछ नहीं किया, यहाँ केवल गान और नृत्य का विलक्षण आनन्द है, उसके प्रभाव से बच्चे अपना सब घर-परिवार, माता-पिता आदि को भूल गये हैं और आनन्द के साथ यहाँ रह रहे हैं । जब जीव को रसानुभूति होती है तब वह उस रस को और रस प्राप्ति के स्थान को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाता है । इसलिए रसानुभूति के लिए, रस प्राप्ति के लिए प्रारम्भिक साधक को माला जप नहीं करना चाहिए, प्रारम्भिक साधक को संकीर्तन करना चाहिए । ऐसा मैंने नहीं अपितु श्रीकृष्णावतार श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा है, जिन्होंने सम्पूर्ण भारत में नृत्य-गान युक्त संकीर्तन आराधना का प्रचार किया । श्रीचैतन्य सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ चैतन्य चरितामृत में उनका यह प्रसिद्ध बंगला पयार (पंक्ति) है – **'जपि लेते हरिनाम करिया निज साधन, उच्च संकीर्तन करे परोपकारे ।'** जप करने वाला केवल अपने ही कल्याण का साधन करता है, उससे परोपकार नहीं होता है जबकि उच्च स्वर से संकीर्तन करने से परोपकार होता है क्योंकि **'पशु-पक्षी कीट भृंग बोलिते न पारे, शुनि लेय हरिनाम तारा सब तरे ।**

मनुष्य योनि के अतिरिक्त पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े आदि जीव-जन्तु मुख से 'हरिनाम' नहीं बोल सकते परन्तु संकीर्तन की ध्वनि के माध्यम से वे हरिनाम श्रवण कर सकते हैं और हरिनाम सुनने से उनके कोटि-कोटि जन्मों के पापों का नाश होता है और इस तरह उनका भी उद्धार हो जाता है । ऐसा लाभ जप से नहीं होता है क्योंकि जप में धीरे-धीरे नाम-ग्रहण करने से केवल नाम-जापक का ही कल्याण होता है, अन्य जीवों को कोई लाभ नहीं होता, इसीलिए जप से हजार गुना महिमा कीर्तन की है । ये महाप्रभु की वाणी है, मेरी वाणी नहीं है । हम जप का खण्डन भी नहीं कर रहे हैं किन्तु यह अनुभव अवश्य मुझे है, हम प्रारम्भ से ही कीर्तन लेके चले हैं और संकीर्तन के ही प्रभाव से मान मन्दिर में दस-बीस व्यक्ति सदा बने रहते हैं क्योंकि इसमें सभी को आनन्द का, रस का अनुभव होता है । हम किसी से जबरदस्ती भी नहीं करते हैं कि तुम कीर्तन करो । कीर्तन नहीं करते हो, माला में तुम्हारा मन है तो जाओ माला के द्वारा जप करो लेकिन इतना अवश्य है कि साधन-भजन में रुचि होने के लिए ही गान और नृत्य का प्रावधान किया गया है और शास्त्र इसका समर्थन करता है, सभी आचार्य इसका समर्थन करते हैं । यह अनुभव का भी विषय है । मान मन्दिर में छोटे बच्चे रहते हैं, इनको यह ज्ञान नहीं है कि वैराग्य क्या है, त्याग क्या है, आसक्ति क्या है ? ये अध्यात्म के विषय में कुछ नहीं जानते हैं लेकिन मान मन्दिर में रुचि के साथ ये क्यों रह रहे हैं और ऐसा रह रहे हैं कि माता-पिता आदि अपने परिवारी जनों को भी भूल गये तो इसका एक ही कारण है, वह है गान और नृत्यमयी रसमयी आराधना । गान एवं नृत्य न होता तो एक भी बालक यहाँ न रहता, एक भी बालिका यहाँ न रहती । सबसे पहले भागवत में यही बात कही गयी – **'शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः .....'** जाओ, महापुरुषों के पास रहो, उनकी सेवा करो और वहाँ कथा-कीर्तन का सेवन करो । अपने आप ही श्रीकृष्ण तुम्हारे हृदय में आ जायेंगे । 'पुण्य श्रवण कीर्तनः' – जिनका कीर्तन करना, सुनना ही पुण्य है । नित्य कथा मिल जाए, नित्य गान मिल जाए, कीर्तन की प्राप्ति हो जाये तो भाग्य खुल गया । प्रभु को तब अपने

आप ही आना पड़ेगा । वे तुम्हारे हृदय में आयेंगे और 'श्रण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः ......' श्रीकृष्ण तुम्हारे हृदय में आ जायेंगे और भीतर बैठकर क्या करेंगे ? तुम्हारे भीतर जितनी भी अशुभ स्मृतियाँ हैं, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अभद्रों को दूर कर देंगे । निश्चय ही वे दूर कर देते हैं । इसका प्रमाण है मानमन्दिर, यहाँ कितने ही लोग रहते हैं, किसी को धन नहीं दिया जाता, यहाँ कोई पंगत नहीं होती है । मानगढ़ का तो यही नियम है कि ब्रजवासियों के यहाँ से भिक्षा माँगकर रोटी खाओ । यहाँ कोई भौतिक सुख-सुविधा नहीं है, कथा-कीर्तन का सेवन करने वाले भक्तों का यहाँ समुदाय है, ऐसे भक्तों के अभद्रों को भगवान् दूर करते हैं और जब मन के अभद्र हट गये, संसार का चिन्तन जो कि सबसे बड़ा अभद्र है, वह हट गया तो वही कल्याण है । कल्याण यही है कि हम मायामय संसार को भूल जायें । पुराणों में कहा गया है – 'स्मर्तव्यः सततं कृष्णः ...... ।' शास्त्रों में बहुत से विधि-निषेध हैं- ऐसा करो, वैसा करो, ऐसा नहीं करो, इस तरह से मत करो, इस प्रकार बैठो, इस तरह खाओ, इस तरह जल पियो । साधु-वैष्णव समाज में तो बड़े विधि-निषेध हैं, उनके यहाँ पंगत में बैठ गये और प्रसाद पाते समय बायें हाथ से जल पात्र अथवा खाद्य सामग्री को छू दिया तो खड़िया कहकर पंगत से बाहर निकाल दिया जाता है । उनके समाज में प्रसाद पाते समय दाहिने हाथ का ही प्रयोग करना होता है, भूल से भी यदि बायें हाथ से कुछ स्पर्श हो गया तो बुरी तरह से तिरस्कार किया जाता है जबकि विशुद्ध वैष्णव धर्म अथवा भागवत धर्म की दृष्टि से ये सब नियम अपेक्षित नहीं हैं । जितने भी विधि-निषेध अर्थात् शास्त्र के निर्देश हैं कि क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए, वैष्णव शास्त्र कहते हैं कि वे सब दास हैं तुम्हारे । सबसे बड़ी विधि एक ही है कि सदा भगवान् को याद करो और सबसे बड़ा निषेध यही है कि एक क्षण के लिए भी भगवान् को मत भूलो । जो इस नियम का पालन करता है, शास्त्र के समस्त विधि-निषेध उसके दास हैं और जो इस नियम का पालन नहीं करता, वह कितना भी शास्त्रीय विधि-निषेध का पालन करता रहे, उसका कल्याण तो होगा नहीं, बल्कि भक्तमाल में ऐसे बहुत से भक्तचरित्र हैं कि इस तरह के विधि-निषेधों के द्वारा कई बार बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों तक को गम्भीर भक्तापराध लग गया और वे भगवान् की उपेक्षा के पात्र बन गये, भगवान् के प्रिय नहीं बन सके । विनयपत्रिका में गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है –

"मिलि मुनिवृन्द फिरत दण्डक वन सो चर्चो न चलाई, बारहि-बार गीध शबरी की बरनत प्रीति सुहाई ।'

भगवान् राम ने चौदह वर्ष के लिए वन में वास किया । दण्डक वन में जब वे गये तो उन्हें बड़े-बड़े ऋषि-मुनि मिले, जो कठोर तपस्या किया करते थे परन्तु वनवास समाप्त करके जब प्रभु अयोध्या आये, राजा बन गये तो अपने वनवास काल की चर्चा करते समय कभी भी उन्होंने वन में रहने वाले तपस्वी ऋषि-मुनियों का स्मरण नहीं किया, उनकी चर्चा कभी नहीं करते थे । चर्चा यदि करी तो गीध (जटायु) की करी जो माँसाहारी था परन्तु जिसने जगत जननी सीताजी को रावण से बचाने के लिए घनघोर युद्ध किया और अंत में अपने प्राणों की भी आहुति दे दी । प्रभु ने चर्चा उस भीलनी की करी जिसने सभी विधि-निषेधों को तिलांजलि देकर अपने मुख से चखे हुए जूठे बेर बड़े ही प्रेम से उन्हें खिलाये । बाहरी शुद्धि-अशुद्धि का, विधि-निषेध का बहुत ध्यान रखने वाले कट्टर कर्मकाण्डी ऋषि शबरी को नीच जाति की स्त्री समझकर उसका बहुत अपमान किया करते थे क्योंकि वे उसे अछूत समझते थे । इस भक्तापराध का यह दुष्परिणाम हुआ कि स्नान, शारीरिक शुद्धि व जल पीने के लिए वे जिस सरोवर का सेवन करते थे, उसमें कीड़े पड़ गये थे । वह सरोवर उनके सेवन के योग्य नहीं रह पाया । जब भगवान् राम ने दण्डक वन में प्रवेश किया तो शबरी के प्रति अपराध के कारण और शबरी की महिमा का ऋषियों को बोध कराने के लिए ही सबसे पहले प्रभु – 'शबरी मैया की कुटिया कहाँ है ?' - यह पूछते हुए उसी की कुटिया पर पहुँचे तथा उसके प्रेम से अर्पित जूठे बेरों को खाया । तदनन्तर वे ऋषियों के पास गये और शबरी के प्रति उनके द्वारा किये गये अपराध और उसके दुष्परिणाम का उन्हें स्मरण कराया तथा शबरी की प्रेमाभक्ति की महिमा उन्हें समझायी, जो ऋषि-मुनियों की हजारों वर्षों की कठोर तपस्या से बहुत अधिक थी । इसी प्रकार कलिकाल में एक बार जब गोस्वामी तुलसीदास जी ब्रजभूमि में पधारे और उसी समय भक्तमाल के रचयिता गोस्वामी नाभाजी भी वृन्दावन में थे तथा उन्होंने सन्तों के लिए विशाल पंगत का आयोजन किया । सभी सन्तों को निमन्त्रण भेजा गया । वे

सभी पंगत में सम्मिलित हुए परन्तु अपनी दीनतावश गोस्वामीजी सन्तों की पंगत में न आकर भिखारियों को जो प्रसाद वितरित किया जाता है, उनकी कतार में खड़े होकर प्रसाद ग्रहण करने पहुँचे । सभी भिखारी अपने साथ पात्र (बर्तन) लेकर आये थे, उन्हें उनके पात्रों में ही खीर प्रसाद दिया जा रहा था । गोस्वामी जी भी भिखारियों के वेष में रात्रि के समय इस प्रकार पहुँचे कि कोई उन्हें पहचान ही नहीं पाया । उनके हाथ में पात्र न होने पर जब कोतवाल ने कहा कि खीर प्रसाद लेने के लिए तुम्हारा पात्र कहाँ है तो गोस्वामी जी ने वहीं पास में रखी किसी संत की पनही (जूते) को आगे कर दिया । यह देखकर कोतवाल महोदय तो बुरी तरह से आगबबूला हो गये और उन्होंने तुलसीदासजी को बहुत फटकार लगायी । खीर प्रसाद भी नहीं दिया परन्तु उसकी कुछ बूँदें भूमि पर गिर गयी थीं, गोस्वामीजी ने भगवत्प्रसाद का आदर करते हुए उन्हीं बूँदों को मुख में डाल लिया और शान्त भाव से वहाँ से चले गये । जब भक्त और उनकी भक्ति के विशेष मर्मज्ञ गोस्वामी नाभाजी को इस बात का पता चला तो उन्होंने ही सबको बताया कि वह कोई भिखमंगा नहीं था, वे तो संत शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी थे । नाभाजी ने भक्तमाल में बहुत से विशुद्ध भक्तों के चरित्र को गाया । भक्तमाल के रूप में भक्तों की माला का सृजन किया तो जपमाला में सबसे मुख्य दाना कहलाता है सुमेरु, जहाँ से जप का आरम्भ और अंत होता है । वह जपमाला का सबसे मुख्य भाग होता है । इसी प्रकार भक्तों की माला के रूप में जब भक्तमाल की रचना नाभाजी ने कर दी तो वे चाहते थे कि इसमें सुमेरु के रूप में किस भक्त को स्थापित किया जाए ? सम्पूर्ण भारत में जिनकी रामचरितमानस का यश फ़ैल गया, वाल्मीकिजी द्वारा रचित संस्कृत का श्रेष्ठतम महाकाव्य के रूप में रामायण का पूरे भारत में सम्मान था किन्तु गोस्वामीजी ने संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ कलिकाल के लोगों के कल्याण हेतु उन्हीं की बोलचाल की प्राकृत भाषा में रामचरितमानस की ऐसी रचना कर दी कि लोग वाल्मीकिजी द्वारा रचित रामायण को भूल गये और गोस्वामीजी द्वारा रचित मानस काव्य की दोहा-चौपाइयों का निरक्षर लोग भी श्रद्धा के साथ गान करने लगे, जिसकी लोकप्रियता से स्वयं कलियुग भी घबरा उठा और मूर्तिमान रूप से गोस्वामीजी के सामने प्रकट होकर उन्हें रामचरितमानस को गंगा में फेंकने की धमकी देने लगा था । वही तुलसीदासजी पूरे देश में अत्यधिक सम्मानित और लोकप्रिय होने पर भी दीनता की मूर्ति बने रहे, अहंकार जिन्हें लेशमात्र भी स्पर्श नहीं कर पाया, गोस्वामी नाभा जी ने वृन्दावन में सन्तों के विशाल भोज में गोस्वामी तुलसीदासजी के दैन्य का प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया और अंत में अपनी भक्तमाल में उन्होंने गोस्वामी तुलसीदासजी को ही भक्तमाल के सुमेरु के रूप में स्थापित किया और वृन्दावन के जिस भण्डारे में सेवाधिकारी साधुगण विधि-निषेध के कर्मकाण्ड प्रधान जिन बाहरी नियमों को बहुत महत्त्व देते थे, उन्हें नाभाजी की प्रेरणा से लज्जित होकर गोस्वामीजी के चरणों में गिरकर क्षमा माँगने को विवश होना पड़ा । इसलिए एक ही विधि है – भगवान् को याद करो और एक ही निषेध है – भगवान् का सदा स्मरण करो । एक क्षण के लिए भी उनको कभी मत भूलो । 'an empty mind is devil's workshop .' – **खाली दिमाग भूतों का कारखाना है ।** दिमाग खाली हुआ और भूत आ गये । भूत कहाँ रहते हैं, उसी घर में, उसी स्थान में रहते हैं, जहाँ कोई नहीं रहता है । जो स्थान सूना होता है, वहाँ भूत रहते हैं । बड़े-बड़े मकान, बिल्डिंग आदि बनी हैं, वे भूतों के डेरे हैं क्योंकि खाली मकान थे । कई मन्दिरों में भी भूत रहते हैं । बरसाने के एक प्रसिद्ध मन्दिर में भी भूत-प्रेतों से सम्बन्धित कई घटनाएँ घट चुकी हैं । वह इतना विशाल मन्दिर है, उसकी ऊपरी मंजिल में एक व्यक्ति रहते थे, उनको किसी ने ऊपर से नीचे पटक दिया, दिखाई कुछ नहीं दिया और उनकी मृत्यु हो गयी थी । यदि सूना मन्दिर है, सूना महल है तो वहाँ कौन रहेगा ? वह स्थान भूतों का आवास बनेगा । उसी प्रकार जब हमारा मन सूना है तो उसमें कौन रहेगा ? उसमें संसार बसेगा । उस सूने मन में भगवान् को बसा लो, अभद्र दूर हो जायेंगे, निश्चय ही दूर हो जायेंगे । इसलिए अकेले में बैठे-बैठे माला जप मत करो । बहुत से लोग इस भ्रम में रहते हैं कि माला पर निश्चित संख्या में जप करना आवश्यक है । ऐसा सोचना गलत है । गीता में भगवान् ने बताया है कि कर्मेन्द्रियों को रोककर साधन (माला जप, ध्यान अथवा पाठ) कोई कर रहा है किन्तु मन से विषयों का चिन्तन कर रहा है तो वह मिथ्याचारी अर्थात् पाखण्डी है ।

निर्मलता की पहिचान 'निर्वासनिक मन'

कोई कर्मेन्द्रियों का तो संयम करके बैठा है और फिर माला से जप कर रहा है लेकिन उसका मन संसार में है तो यह मिथ्याचार है – **कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।**

इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ (श्रीगीताजी ३/६)

भगवान् द्वारा गीता में कहे इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिए वल्लभ सम्प्रदाय के भक्तों के चरित्रों के सम्बन्ध में वहाँ के ग्रन्थ – 'वैष्णव वार्त्ता' में एक कथा है कि किसी परिवार में एक वैष्णव लड़की थी । वह बचपन से ही भगवान् की भक्ति करती थी और उसके अन्दर भक्ति के संस्कार बन गये थे । उसने अपने पिता से कह दिया था कि मैं विवाह नहीं करूँगी । पिता ने कहा कि बेटी ! विवाह तो तुझे करना ही पड़ेगा । पिता की आज्ञा से बेटी का विवाह हुआ किन्तु भक्त परिवार में विवाह किया गया । वल्लभ सम्प्रदाय के अच्छे विद्वान् थे, उनके पुत्र के साथ इस कन्या का विवाह कर दिया गया परन्तु वे वैष्णव थे, विद्वान् थे लेकिन उनके हृदय में रस नहीं था । एक बार वे अपने घर की छत पर बैठकर माला से जप कर रहे थे और वह वैष्णव कन्या जो उनके घर में नववधू बनकर आई थी, वह नीचे बुहारी लगा रही थी । उसको बाहर की ही सेवा बुहारी लगाना आदि दी गयी थी क्योंकि उसके बारे में यही विचार था कि अभी यह नवयुवती है, ठाकुरजी की सेवा करना नहीं जानती है । जब वह बुहारी लगा रही थी, इतने में ही कुछ बाहर के वैष्णव आये और उन्होंने इस वधू से उसके ससुर के बारे में पूछा कि क्या वैष्णवजी घर में हैं ? इस वधू ने कहा कि अभी तो वे घर में ही थे लेकिन थोड़ी देर पहले मोची के पास अपना जूता सिलवाने के लिए गये हैं । ससुर जी ऊपर बैठे यह बात सुन रहे थे । जब बाहरी लोग चले गये तो वे अपनी कुलवधू के ऊपर बहुत अधिक क्रोधित हुए और बोले – 'अरे, यह तो बड़ी मूर्ख लड़की है । हमने तो इसे अच्छे वैष्णव की कन्या समझकर अपने पुत्र के साथ इसका विवाह किया किन्तु इसने कैसा निकृष्ट कार्य किया, इसको पता था कि मैं छत पर बैठकर माला जप कर रहा हूँ फिर भी बाहर के वैष्णव मेरे बारे में इससे पूछ रहे थे तो इसने कह दिया कि वे तो घर में नहीं हैं, जूता सिलवाने मोची के पास गये हैं । इसने इस तरह झूठ भी बोला और मेरी प्रतिष्ठा को भी हानि पहुँचायी ।' उनकी बात सुनकर वधू ने कहा – 'पिताजी ! भूल हो गयी किन्तु मैं एक बात पूछती हूँ कि माला करते समय क्या आप मोची के यहाँ नहीं गये थे ?' ससुर – 'मैं तो यहीं बैठा हूँ । मैं मोची के पास कब गया ?' पुत्रवधू – 'आप नहीं गये किन्तु आपका मन तो गया था ।' अपनी पुत्रवधू की बात सुनकर ससुर जी चौंक गये क्योंकि वास्तविकता यह थी कि उनका जूता फट गया था और जब वे माला लेकर जप कर रहे थे तो सोच रहे थे कि आज मुझे किसी कार्यवश राजा के दरबार में जाना है किन्तु मेरा जूता तो फटा हुआ है, मोची के पास जाकर उस फटे जूते को ठीक करवा लेना चाहिए । अपनी पुत्रवधू के मुख से अपने मन की स्थिति के बारे में सुनकर विद्वान् वैष्णव स्तब्ध रह गये, उनकी वाणी अवरुद्ध हो गयी, कुछ बोल नहीं सके । उन्होंने तुरन्त ही अपनी पत्नी को बुलाया और उससे कहा – 'यह साधारण लड़की नहीं है । यह तो मेरे मन की गति को जानती है । इसलिए अब इसको बाहर की सेवा बुहारी लगाना आदि मत दो । अब तो इसको ठाकुर जी की ही सेवा सौंप दो । इस वैष्णववार्त्ता से पता चलता है कि वास्तव में जहाँ हमारा मन है, वहीं हम हैं, बाहरी साधन माला जप – ध्यान आदि से कुछ नहीं होता । हम मन से जिसका चिन्तन करेंगे, उसी की हमें प्राप्ति होगी । छोटे बच्चे अगर भगवान् की भक्ति करते हैं तो भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं, निश्चय ही प्रसन्न होते हैं । यह मेरा अनुभव है । २००९ में हम लोगों ने ब्रज के पर्वतों की रक्षा हेतु कामवन (कामां) में आमरण अनशन किया था । उस अजेय संघर्ष में हमने बारह घण्टे में विजय प्राप्त कर ली क्योंकि हमारे मान मन्दिर की छोटी-छोटी बच्चियाँ भी अनशन में बैठी थीं । बहुत से पत्रकार और बाहर के संत, विदेशी भक्त भी वहाँ आये थे, वे सभी इन बच्चियों को समझाते थे कि तुम लोग भोजन कर लो लेकिन ये बालिकायें कहती थीं – 'नहीं, जब बाबा भोजन करेंगे तभी हम लोग भोजन करेंगी । बाबामहाराज अनशन करेंगे, अन्न-जल नहीं ग्रहण करेंगे तो हम भी ऐसा ही करेंगी ।' इनकी ऐसी भक्ति को देखकर भगवान् प्रसन्न हो गये और

रात को बारह बजे राजस्थान के मुख्य मन्त्री का मेरे पास फोन आया, उन्होंने मुझसे कहा कि आपकी सभी माँगें मान ली गयी हैं । आप अपना अनशन तोड़ दीजिये और आज से ब्रज के सभी पर्वतों का खनन सदा के लिए बन्द हो जायेगा । श्रीबाबा कहते हैं कि मेरी तो मृत्यु भी हो जाती तब भी कुछ कार्य न होता परन्तु भगवान् ने देखा कि छोटे-छोटे बच्चे अन्न-जल त्यागकर ब्रज के पर्वतों की रक्षा के लिए आमरण अनशन कर रहे हैं तो इनके अनशन से प्रभु रीझ गये । यह मेरा अनुभव है । इसे खुले आम हम कहते हैं । इसी प्रकार एक बार प्रशासन की ओर से आदेश आया था कि गह्वर वन स्थित मान मन्दिर की साध्वियों का आवास और उस समय की नृत्यमयी संकीर्तन आराधना का स्थल रस कुञ्ज की विशाल बिल्डिंग को तोड़ दिया जायेगा क्योंकि यह वन विभाग की भूमि पर बना है । हमारे मन्दिर के व्यवस्थापक इस बात से बहुत चिन्तित हुए और उन्होंने मुझे इसकी सूचना दी । मैंने कहा कि प्रशासन तो क्या ब्रह्मा की भी सामर्थ्य नहीं है कि इस स्थान को तोड़ दें क्योंकि यहाँ पर बालिकायें नृत्य आराधना करती हैं, यह आराधना स्थल है । यह कभी नहीं टूटेगा । यहाँ निष्काम आराधना होती है । बच्चों की भक्ति से भगवान् शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं । हम लोग तो पुराने पापी हैं, न जाने क्या-क्या पाप करके आये हैं और अब साधु बन गये हैं किन्तु मान मन्दिर के बच्चे तो निर्मल हैं । महाराष्ट्र के प्रसिद्ध भक्त नामदेव जी जब छोटे से बच्चे थे तो उनकी निष्कपट भक्ति से भगवान् प्रकट हो गये थे और उनके हाथ से दूध का कटोरा लेकर दूध पिया था; ये सब सच्ची घटनाएँ हैं । प्रह्लादजी ने भी कहा है कि बचपन से, कुमार अवस्था से भक्ति करनी चाहिए – **'कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ।'** (श्रीभागवतजी ७/६/१) अरे भाई ! कौमार्य-अवस्था (पाँच वर्ष की अवस्था) से ही भजन शुरू कर दो । यह प्रह्लाद जी का वाक्य है । उनसे पूछा गया कि कुमार अवस्था से भजन क्यों किया जाये ? प्रह्लादजी ने उत्तर दिया कि भक्ति करने की यही अवस्था है । हम लोग सोचते हैं कि भविष्य में आगे भजन करेंगे, वृद्धावस्था में भजन करेंगे । ऐसा करने से प्रमाद उत्पन्न हो जाता है और बच्चों में प्रमाद नहीं होता है । हमारे यहाँ सबसे अधिक नृत्य बच्चे ही करते हैं । वृद्ध लोग तो फिर भी बैठे रहते हैं । हम प्रतिदिन रसमण्डप में देखते हैं कि वृद्धों को खड़े होना भी मुश्किल हो जाता है किन्तु बच्चे घण्टों तक नाचते हैं । इसीलिए ब्रजवासी कहते हैं – **'जवानी में भज ले राम, मत देखै आस बुढ़ापे की ।'** हम सोचते हैं कि वृद्धावस्था में भजन करेंगे । भजन तभी होता है, जब मनोयोग होता है । जैसे बच्चे रस मण्डप में नृत्य करते हैं, गाते हैं, ऐसी बात बड़ों में नहीं देखी जाती है । इसीलिए प्रह्लाद जी ने कहा है कि कुमार अवस्था से भजन करो । बच्चों के भजन को हम लोग हुल्लड़ समझते हैं लेकिन नहीं, इन्हीं का भजन वास्तविक भजन है । हम लोग तो ढोंग करते हैं । इसी बात को भगवान् ने गीता में कहा – **'कर्मेन्द्रियाणि संयम्य.........मिथ्याचारः स उच्यते ।'** (श्रीगीताजी ३/६) मन तो हमारा भगवान् में है नहीं, कर्मेन्द्रियों को रोककर बैठ जाते हैं और मन संसार का स्मरण करता रहता है तो वह भजन नहीं है, मिथ्याचार है । हम सब काम मिथ्या कर रहे हैं । भजन तो वही है, जैसा कि भगवान् ने अगले श्लोक में कहा – **"यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन । कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥"** (श्रीगीताजी ३/७) जिसने मन को रोक लिया है, मन को भजन में लगा दिया है, वह भजन वास्तविक भजन है । असक्तः स विशिष्यते – वह बड़ा है, उसके भजन का विशेष महत्त्व है । श्रीबाबामहाराज पुनः उस व्यक्ति से कहते हैं कि तुमने कागज में लिखकर हमें दिया कि मुझे अपने पुत्र की बहुत याद आती है तो सब भूल जाओ । दिन में जब बेटे की याद आती है तो गौशाला में जाकर कीर्तन किया करो और रात को मान मन्दिर में आ जाओ । अकेले माला जपना छोड़ दो । ऐसा करने से तुम्हारे मन के जितने भी भूत हैं, वे सब चले जायेंगे । अकेले भजन करोगे तो नहीं जायेंगे । संकीर्तन क्या है ? जीव गोस्वामीजी ने इसकी परिभाषा लिखी है – 'सङ्गीभूय सङ्कीर्तयन्ते' – जहाँ बहुत से लोग मिलकर कीर्तन करते हैं, उसको संकीर्तन कहते हैं । श्रीमद्भागवत के छठे स्कन्ध में कहा गया है कि संकीर्तन करो अर्थात् इकट्ठे होकर कीर्तन करो ।

तस्मात् सङ्कीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम् । महतापि कौरव्य विद्ध्यैकान्तिकनिष्कृतम् ॥ (श्रीभागवतजी ६/३/३१)

यमराज अपने दूतों से नरक में कहते हैं – हे दूतो ! भगवान् का संकीर्तन करने से सारे जगत् का मंगल होता है । बहुत से लोग मिलकर जहाँ कीर्तन कर रहे हैं, उसे 'संकीर्तन' कहते हैं ।

'संकीर्तन' ही सरस साधन

समाज में अधिकांश लोग मिथ्या अहंकारी होते हैं, वे कहते हैं कि हमारा तो एकान्त में मन लगता है । कुछ नहीं लगता तुम्हारा मन, जब इतने लोग जो संकीर्तन में गा रहे हैं, बजा रहे हैं, वहाँ तुम्हारा मन नहीं लगता तो अकेले में रहकर क्या भूत बनोगे ? हम नहीं मानते कि अकेले में तुम्हारा मन लगता है । यह पूर्णतया मिथ्या अहंकार है कि हम एकान्त में भजन करते हैं । श्रीमद्भागवत के अनुसार – **'नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।'** (भा.१२/१३/२३)

श्रीमद्भागवत के अन्त में यह श्लोक कहा गया है । इसमें 'नाम सङ्कीर्तन' शब्द का प्रयोग किया गया है, 'नाम जप' नहीं क्योंकि जप तो धीरे-धीरे किये जाने पर केवल नाम जापक के ही पापों को नष्ट करेगा परन्तु 'संकीर्तन' का अर्थ है जब कई भक्त मिलकर उच्च स्वर से भगवान् के नाम, रूप, गुण, लीला का उच्चारण करते, गाते हैं तो उसके द्वारा सभी के पापों का नाश होता है, वह संकीर्तन अनन्त पापों को जला देगा । धर्मराज (यमराज) ने भी (भागवत '६/३/३१' में) यही बात कही है कि भगवान् के संकीर्तन से सारे संसार का कल्याण होता है, जहाँ-जहाँ तक नाम-कीर्तन की ध्वनि जाती है, उसके प्रभाव से चर-अचर, जड़-चेतन समस्त जीवों का मंगल होता है । इसीलिए तो कलिकाल में श्रीकृष्णावतार हुआ श्रीगौरांगमहाप्रभु के रूप में, जिस अवतार को कलिपावनावतार कहा गया क्योंकि उन्होंने सम्पूर्ण भारत में नाम-संकीर्तन का प्रचार करके कलिकाल के समस्त जीवों के पापों को नष्ट करके उनको पवित्र कर दिया । झारखण्ड के घनघोर जंगल में नाम-कीर्तन के द्वारा उन्होंने पागल हाथियों के झुण्ड और शेर-बाघ आदि हिंसक पशुओं के द्वारा भी नाम उच्चारण कराकर उनका उद्धार कर दिया । महाप्रभु ने बहुधा नगर-कीर्तन के माध्यम से नाम का प्रचार किया, जिससे अखिल विश्व का कल्याण हो । नगर कीर्तन ने ही आगे चलकर भारत के गाँव-गाँव में, नगर-नगर में प्रभात फेरियों का रूप ग्रहण किया, भारत के हजारों गाँवों-नगरों और विदेशों तक में प्रभात फेरियों का प्रचार-प्रसार हुआ जिससे कि संसार के प्रत्येक जीव का मंगल हो । कुछ भिन्न प्रकृति के नीरस लोगों की इस सर्वमंगलकारी सहज एवं रसमय साधन में रुचि व आस्था नहीं होती है, वे अपने कमरों में अकेले बैठकर जप-पाठ आदि व्यक्तिगत कल्याण के ही साधनों में लगे रहते हैं, संकीर्तन को वे व्यर्थ का हल्ला-गुल्ला, शोर-शराबा समझते हैं, उनसे निवेदन किया जाना चाहिए कि स्वार्थी मत बनो, केवल अपने ही हित की मत सोचो, परोपकार की सोचो, दूसरों के भी हित के बारे में ध्यान दो, संकीर्तन में सम्मिलित होने का प्रयत्न करो क्योंकि श्रीमद्भागवत के अनुसार, संसार का शासन करने वाले यमराज के अनुसार इससे पूरे विश्व का मंगल होता है, जगन्मंगल (सम्पूर्ण जगत का मंगल) होता है । यह वेदान्तसार परमहंस संहिता श्रीमद्भागवतजी का वाक्य है – **तस्मात् सङ्कीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम् । महतामपि कौरव्य विद्ध्यैकान्तिकनिष्कृतिम् ॥** (भा. ६/३/३१)

इस श्लोक में नाम-संकीर्तन के द्वारा सम्पूर्ण जगत का मंगल होने की बात कही गयी है । हम जैसे स्वार्थी लोग सोचते हैं कि केवल अपना ही पेट भर लें, दूसरे लोग भूखे मरते हैं तो मरने दो । भगवन्नाम कीर्तन से बड़े से बड़े पाप-अपराध नष्ट हो जाते हैं । इससे संसार का कल्याण होता है । श्रीजी की विशेष कृपा है कि मान मन्दिर के सभी साधक-साधिकाएँ संकीर्तन की महिमा को समझते हैं और उत्साह के साथ इसमें भाग लेते हैं । रसमण्डप और मान मन्दिर में नित्य ही संकीर्तन होता रहता है, श्रद्धावान लोग नृत्य भी करते हैं । इस तरह यह संकीर्तन महोत्सव बन गया है और ऐसा उत्सव बना कि दिन-रात चल रहा है, माताजी गौशाला में भी चल रहा है । यह संकीर्तन का ही चमत्कार है कि गौशाला में गोवंश की सेवा में प्रतिदिन का ही लाखों रुपये का खर्च है किन्तु इसके लिए किसी से याचना नहीं की जाती है और गोसेवा का यह खर्च संकीर्तन के प्रभाव से ही पूरा हो रहा है । इसीलिए जो सज्जन मान मन्दिर में रह रहे हैं और मुझसे उन्होंने कहा था कि मुझे अपने बेटे की बार-बार याद आती है तो मैं दुःखी हो जाता हूँ तो उनसे मेरा यही कहना है कि आप जो कहते हैं कि मुझे अपने पुत्र की याद आती है तो उस दुःख को आप भूल जाओगे । यहाँ आप स्थायी रूप से रहना चाहते हैं तो अकेले में माला जप मत करिए, दिन भर माताजी गौशाला में कीर्तन कीजिये और संध्या को पुनः

गह्वरवन के संकीर्तन भवन में आ जाइये, रात को मान मन्दिर में कीर्तन कीजिये । 'कीर्तन' इन्द्रिय-प्रधान साधन है । मनुष्य को इन्द्रिय प्रधान साधन करना चाहिए । महापुरुषों ने बताया है कि जब मनुष्य कीर्तन करता है, हाथ से ताली बजाता है, शब्द करता है तो जैसे किसी फलों के वृक्ष पर बहुत से पक्षी बैठे हैं तो माली उनको भगाने के लिए किसी धातु के पीपे को बजाकर ध्वनि उत्पन्न करता है तो सब पक्षी उड़ जाते हैं । इसी प्रकार जब भक्त संकीर्तन करता है तो जितने भी पाप रूपी पक्षी हैं, वे सब उड़ जाते हैं । कीर्तन करने वाले के पाप उड़ जाते हैं, उसके पास बैठने वाले के पाप उड़ जाते हैं, जितने भी श्रोता हैं, उन सबके भी पाप रूपी पक्षी उड़ जाते हैं । इसके विपरीत महात्माओं ने एक दोहा कहा है – **'पाप कह्यो गोपाल सों, मोकूँ ठौर बताओ ।'** एक बार पाप मूर्तिमान होकर भगवान् की शरण में गया और बोला – 'प्रभो ! मुझे रहने के लिए कोई स्थान बता दीजिये ।' भगवान् ने उससे कहा कि जहाँ बहुत से लोग कीर्तन कर रहे हों, वहाँ मत रहना किन्तु वहाँ बहुत से निकम्मे लोग होंगे जो कीर्तन नहीं कर रहे होंगे, तुम उनके मुख में प्रवेश कर जाना, जो अभागा संकीर्तन के समय भी मुख नहीं खोल रहा है, मुख से नाम नहीं बोल रहा हो, उसके मुख में घुस जाना । इसलिए भैया ! तुम्हारे सभी पाप भाग जायेंगे, इसके लिए तुम नियम बना लो कि सारे दिन गौशाला में कीर्तन करो । गायों की सबसे बड़ी सेवा है उन्हें भगवन्नाम सुनाना । गोपियाँ भी एक पद में कहती हैं – **'मेरी प्यारी ओ गैया तू ये गीत गा दे । गोविन्द गोपाल मोहन मुरारी, राधारसिक श्याम राधाबिहारी ।'** गोपियाँ दूध दुहते समय अपनी गायों से कहती थीं – 'मेरी प्यारी गैया ! तू गोविन्द-गोपाल गा दे ।' इसी प्रकार गौशाला में कीर्तन करोगे तो तो यह गायों की सेवा होगी । कीर्तन सुनकर गायें प्रसन्न हो जायेंगी । किसी दूसरे के बहकावे में मत आ जाना क्योंकि संसार में बड़े-बड़े मूर्ख भी पड़े हैं, कलिकाल में विरक्त वेष में बहुत से अज्ञानी भी हैं, जो संकीर्तन का विरोध करते हैं । उनको असुर समझ लेना, चाहे उनका बाहरी वेष कितना ही अच्छा क्यों न हो । बलरामजी के अनुसार तो ऐसे लोग धर्मध्वजी हैं, जिनका वेष या चिह्न तो धार्मिक है परन्तु जिनका आचरण भागवत धर्म के, वैष्णव धर्म के विरुद्ध है ।

अदान्तस्याविनीतस्य वृथा पण्डितमानिनः । न गुणाय भवन्ति स्म नटस्येवाजितात्मनः ॥ (श्रीभागवतजी १०/७८/२६)

अजितात्मा (जिसने मन-इन्द्रियों को पूर्णतया वश में नहीं किया) झूठमूठ ही अपने को बहुत बड़ा पण्डित मान लेता है । जैसे नट की सारी चेष्टायें अभिनय मात्र ही होती हैं, वैसे ही उसके द्वारा किया गया सम्पूर्ण शास्त्रों का अध्ययन केवल स्वाँग के लिए ही होता है । उससे न तो उसका कोई लाभ है और न किसी दूसरे को लाभ होता है । इसीलिए बलरामजी ने आगे तो यहाँ तक कह दिया – **'एतदर्थो हि लोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः ।**

वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः ॥' (श्रीभागवतजी १०/७८/२७)

जो लोग धर्म का चिह्न धारण करते हैं परन्तु धर्म का पालन नहीं करते, ऐसे धर्मध्वजी अधिक पापी हैं और वे मेरे लिए वध करने योग्य हैं । स्वामी हरिदासजी ने कहा है – **'और कोई भूलो तो भूलो, तुम मत भूलो मालाधारी ।'**

साधारण लोग भूल जाएँ तो कोई बात नहीं किन्तु हे मालाधारी ! तुम्हारे हाथ में माला, गले में तुलसी की माला है, अतः श्रेष्ठ आचरण को तुम मत भूलो । कबीरदासजी ने तो प्रायः जितने भी पद कहे हैं, उन सभी में उन्होंने साधु-सन्तों को ही सावधान किया है – कहत कबीर सुनो भाई 'साधो' । हरिरामव्यासजीमहाराज ने भी बहुत सुन्दर पद कहा है – **'जो तू माला तिलक धरे । तो या तन मन व्रत की लज्जा और निवाह करै ॥'** अगर भक्ति के चिह्न धारण करते हो तो भक्ति की समस्त मर्यादाओं का भी पालन करना चाहिए । जैसे किसी दुकान के बाहर बोर्ड पर लिखा हो कि यहाँ शुद्ध देशी घी मिलता है परन्तु यदि उसी दुकान पर चर्बी मिश्रित घी बिकने लग जाए तो क्या उस दुकान का यश रह जायेगा ? इससे तो उसकी बदनामी हो जाएगी कि जहाँ शुद्ध वस्तु का साइन बोर्ड लगा है, वहाँ ही ऐसी अशुद्ध वस्तु मिल रही है । माला-तिलक आदि क्या हैं, ये सब साधु-सन्तों, वैष्णवों के साइन बोर्ड हैं कि कम से कम साधारण आदमी में दुर्गुण हों तो हों परन्तु सन्तों-वैष्णवों के अन्दर नहीं होने चाहिए । इसीलिए रसिकों ने कहा – "और कोई भूले तो भूले, तुम मत भूलो मालाधारी ।" श्रीव्यासजीमहाराज भी कहते हैं – 'जो तू माला तिलक धरै ।' या तो धर्म की ध्वजा धारण मत करो और

यदि ध्वजा धारण करते हो तो उसका ठीक से निर्वाह करो, उसकी लज्जा रखो । वैष्णव वेष साक्षात् भगवान् का स्वरूप है । हम लोग उलटे-सीधे आचरण करके वैष्णव-वेष को लज्जित करते हैं, इसका उपहास कराते हैं, जबकि महात्माओं ने बहुत कठोर बातें कही हैं, बड़े सख्त निर्देश दिए हैं – **'जो तू माला तिलक धरे तौ या तन मन व्रत की लज्जा और निबाह करै । करि बहु भाँति भरोसो हरि को भवसागर उतरै ॥'** वैष्णव-वेष धारण किया है तो इस वेष की लज्जा रखना । वैष्णव-वेष धारण करके यदि सांसारिक लोगों से आशा की जाए तो इसमें भगवान् का अनादर है, उनका अपमान है । हम लोग भगवान् के दास बनते हैं और नाम रखते हैं – रामदास, कृष्णदास आदि किन्तु संसारी लोगों से आशा करते हैं तो इसमें अनादर किसका है ? हम लोग भगवान् का ही तो अनादर कर रहे हैं । **'मनसा वाचा और कर्मणा तन कर गुनह्व धरै । सती न फिरत घाट ऊपर तै सिर सिन्दूर परै । ब्यास दास कौ कुञ्ज बिहारी प्रीति न कबहु बिसरै ॥'** वैष्णवमात्र का सबसे बड़ा लक्षण यही है कि भगवान् के चरणों के प्रति उसका अनुराग कभी कम न हो, कभी अनुराग घटे नहीं । अस्तु, जब यही वैष्णवोचित गुण-धर्म श्रीरोमहर्षण सूतजी के अन्दर श्रीबलरामजी ने नहीं देखे तो उन्होंने कहा – **'वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः ।'** ऐसे लोग ज्यादा पापी हैं, जो साधु-वैष्णव वेष धारण करके वेष की निन्दा कराते हैं, वेष को लजाते हैं । वे साधारण पापियों से अधिक पापी हैं । ऐसा कहकर बलरामजी ने अपने हाथ में स्थित कुश की नोक के प्रहार से सूत जी का वध कर दिया । यह बहुत बड़ी अनहोनी घटना घट गयी । सूतजी अभी थोड़ी देर पहले ही कृष्ण कथा कह रहे थे और अचानक बलरामजी ने उनका वध कर दिया । उन्होंने यहाँ तक कह दिया – **'एतदर्थो हि लोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः ।'** – मैंने ऐसे धर्मध्वजियों को मारने के लिए ही अवतार धारण किया है । इसीलिए कलियुग में धर्मध्वजियों की जो फ़ौज देश-समाज और सनातन धर्म को खोखला करने में लगी हुई है, उससे बहुत अधिक सावधान रहने की आवश्यकता है । ऐसे ही लोग निष्काम संकीर्तन-आराधना का विरोध करते हैं, उनके कुसंग से बचना चाहिए और इस रसमयी उपासना को उत्साह के साथ सतत करते रहना चाहिए ।

उपयोगी औषधि 'गौमूत्र'

भावाभिव्यक्ति – परम गौ-सेवी

संत 'श्रीब्रजशरणजीमहाराज'

श्रीमाताजी गौशाला, श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

देशी गाय के 'गौमूत्र' का उपयोग 'बच्चे, जवान, बूढ़े' कोई भी कर सकते हैं। गौमूत्र औषधिगुण वाला होता है, जो समस्त बीमारियों में विशेष औषधि का कार्य करता है । बैल का मूत्र भी औषधि के गुणों का कार्य करता है । गौ-मूत्र को ताँबे या पीतल के बर्तन में न रखें, उसे रखने के लिए मिट्टी, काँच, चीनी मिट्टी या स्टील का बर्तन प्रयोग कर सकते हैं । जर्सी गाय का दूध, मूत्र, गोबर इत्यादि उपयोग नहीं करना चाहिए, नुकसान हो सकता है । गौ-मूत्र के गुण पवित्र, विषनाशक, त्रिदोष नाशक, तांत्रिक, मेधाशक्ति वर्धक होते हैं, केवल गौमूत्र पीने से सभी रोगों का नाश हो जाता है। विटामिन 'बी' तो गौमाता के पेट में हमेशा रहता है, जो मन के रोगों का भी नाश करता है। गौ-मूत्र छह माह लगातार पीने से आदमी सतोगुणी हो जाता है, रजोगुण और तमोगुण का नाश हो जाता है । गौमूत्र से पीलिया, कब्ज (मलावरोध), श्वाँस (साँस) का रोग, कान के रोग, तिल्ली, पेट में कीड़ा, उदर रोग, सूजन, खांसी, सभी वायु विकार, नेत्र रोग, आमबात, खुजली, सोराइसिस, मुख रोग इत्यादि सब ठीक हो जाते हैं । गौमाता का मूत्र बवासीर, भगन्दर, कुष्ठ रोगी, पेट दर्द, सफेद दाग, पथरी, गैंगरीन (जिसका एलोपैथी में कोई इलाज नहीं, केवल अंग को काट देते हैं) इत्यादि बीमारियों को भी दूर करने में बहुत सहयोगी होता है, शरीर के लिए शक्तिवर्धक व हृदय को भी शक्ति व सन्तोष प्रदान करता है । 'गौमूत्र' मानव शरीर की रोग-प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाकर रोगों को नाश

करने की क्षमता देता है, Immunity power देता है, निर्विष होते हुए भी यह विषनाशक है, Anti-Toxic है । मासिक-धर्म के दौरान महिलाओं को गौमूत्र पीने से शान्ति और शक्ति मिलती है । गौ-मूत्र को सिर में अच्छी तरह मलकर आधे घन्टे तक लगे रखना चाहिए। सूखने के बाद धोने से बाल सुन्दर व रूसी (फियाश) व टूटने, झड़ने बन्द हो जाते है । खाज-खुजली में गौ-मूत्र को नीम के पत्ते के साथ पीसकर लेप करना चाहिए । टी० बी० के रोग में गोबर और गौमूत्र की गंध से क्षय के जन्तुओं का नाश हो जाता है ।

गौ-मूत्र सेवन की मात्रा – एक वर्ष से कम आयु के बच्चे को ५ से १५ बूँद खाली पेट, १ वर्ष से २ वर्ष तक के बच्चे को २ चम्मच, २ से ५ वर्ष के लिए ३ चम्मच, ५ से १० वर्ष के लिए ४ चम्मच, १० वर्ष से बड़ों को ५ चम्मच; इसके बाद आधा गिलास सुबह खाली पेट गाय (देशी) का दूध सेवन करें । गाय का दूध स्वादिष्ट, रुचिकर, बलकारक, कान्तिप्रद, बुद्धि को बढ़ाने वाला, वीर्य की पुष्टि करने वाला और शक्ति-वर्द्धक होता है तथा हृदय के संतुलित रूप से शरीर का विकास करता है। गौमाता एक ऐसा दैवीय जीव है, जिसकी आँत बड़ी लम्बी होती है, फलस्वरूप गाय के दूध में 'केरोटीन' नामक ऐसा उपयोगी एवं बलशाली पदार्थ मिलता है जो अन्य (किसी दूसरे) के दूध में नहीं होता है ।

गाय का दूध सर्वश्रेष्ठ तथा पूर्ण भोजन है। गौ-दुग्ध सब रोगों या अवस्थाओं में सेवन करने योग्य रसायन, हृदय के लिए हितकारी है। गाय के दूध का प्रोटीन अधिक आसानी से पच जाता है, वीर्य-वर्धक है और छूत के रोगों को भगाने वाला है। गौ-दुग्ध दो घन्टे में पच जाता है, जो पुरुषार्थ-शक्ति, चुस्ती लाने वाला सात्विक आहार है।

गौ-माता के दूध में विटामिन 'बी' भी होता है। विटामिन 'बी' खून में उपस्थित सफेद खून कणिकाओं को रोगग्रस्त होने से रोकता है । इसमें १४ प्रकार के विटामिन भी पाये जाते हैं। गाय का दूध और माँ का दूध बराबर होता है । गौ-माता के दूध पीने से कोलेस्ट्रॉल नहीं बढ़ता है। यदि गाय के दूध में शतावर चूर्ण मिलाकर दिया जाए तो टी० बी० और कैंसर जैसी बीमारी भी ठीक हो सकती है ।

अवढरदानी परमदेव 'श्रीशंकर भगवान्'

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि 'महाशिवरात्रि' कहलाती है, जो परम मंगलकारिणी है । इस तिथि की परम पावनता के अनेक कारण हैं, जैसे – इस दिन भगवान् शंकर का देवी पार्वतीजी के साथ विवाह हुआ था । इसी तिथि में शिवजी ने समुद्र-मंथन से निकले हुए हलाहल कालकूट विष का पान किया था । भूतभावन भोलेनाथ श्रीशंकरजी के श्रीविग्रह की प्राकट्य-तिथि भी यही है । वस्तुतः इस परम पुण्यमयी तिथि की बहुत बड़ी महिमा है क्योंकि इसका सम्बन्ध साक्षात् महादेव भगवान् शंकर से है । भगवान् शंकरजी की परमाद्भुत महिमा होने से इस तिथि की महिमा भी अति विशेष हो गई है । यहाँ तक कि इस दिवस में किए गए शिवाराधन की महिमा भी विलक्षण है । कोई यदि सच्चे समर्पित भाव से भगवान् शंकर की शरण लेकर आराधन-अर्चन-वन्दन करता है तो उस पर शिवजी अति शीघ्र परम प्रसन्न होकर अपनी परम प्रिय वस्तु 'श्रीराधामाधव का दिव्य महारास का रस' प्रदान कर देते हैं । बहुत जल्दी खुश होने वाले 'आशुतोष-अवढरदानी भूतभावन भोलेनाथ भगवान् शंकर' की उदारता-दानशीलता बहुत विचित्र है; ऐसी अन्यत्र दिखाई नहीं देती है । 'श्रीभोलेनाथ भगवान्' अपने सरल स्वभाव व भोलेपन की वृत्ति' के कारण ही समस्त सृष्टि के परम प्रिय बन गए हैं; यहाँ तक कि सुर-नर-मुनि-भक्तजन व स्वयं श्रीभगवान् के आराध्यदेव तो हैं ही, बड़े-बड़े असुरों के भी आराध्य बने हुए हैं । एक सच्चा सिद्धान्त है कि जहाँ सबसे अधिक सहजता (स्वाभाविकी सरलता) होती है, वहीं समर्पण भाव भी सर्वाधिक होता है, इसीलिये वहीं सरस भावों की सर्वोच्चता होती है । इस भक्तिमय सिद्धान्त के साक्षात् स्वरूप श्रीशिवजी ही हैं । श्रद्धा स्वरूपा महादेवी श्रीपार्वतीजी इनकी नित्य संगिनी महाशक्ति हैं । श्रद्धा का परिपक्व रूप ही विश्वास बनता है, जिसके साक्षात् स्वरूप श्रीशंकरजी ही हैं । श्रद्धा-विश्वास के बिना भक्ति-भाव में प्रवेश नहीं हो सकता, इसीलिये भक्तमाल सुमेरु गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीमहाराज ने भी सर्वात्मभाव से शंकर भगवान् की शरणागति ग्रहण करते हुए

आराधना की है – “गुर पितु मातु महेस भवानी । प्रनवउँ दीनबन्धु दिन दानी । सेवक स्वामि सखा सिय पी के । हित निरुपधि सब विधि तुलसी के ॥” ‘शिव’ शब्द मंगलवाची है, जो ‘कल्याण’ का बोधक है । श्रीशंकर भगवान् की भक्तजन ‘शंकर, शिव, महेश, महादेव, भोलेनाथ, भूत-भावन, आशुतोष, अवढरदानी’ इत्यादि नामों द्वारा स्तुति-आराधना करते हैं । वस्तुतः भगवान् शंकर का त्याग, वैराग्य, श्रीइष्ट में समर्पण, उदारता आदि अद्भुत व अनुपम है । इसीलिये इन्हें ‘शंकर’ कहते हैं अर्थात् ‘शं कर’ जो नित्य निरन्तर सभी के परम कल्याण करने में ही लगे रहते हैं । जहाँ करुणा का भाव होता है, वहीं असीम कल्याणमय कृपा करने की भावनाएँ सहज ही उदय होने लगती हैं, अतः श्रीशंकरजी का ‘कल्याण करने का भाव अति विशेष होने के कारण’ नाम ही ‘शंकर’ हो गया है; जिनका सम्पूर्ण शरीर ही मंगल करने के लिए ही समर्पित होने से ‘शिव’ हैं अर्थात् ‘मंगल-स्वरूप’ हैं, इसीलिये इन्हें ‘शिवजी’ कहते हैं । समस्त ईश्वर कोटि की सत्ताओं के भी ईश्वर, स्वामी, इष्ट ‘आराध्य’ होने से इन्हें ‘महेश’ कहते हैं । समस्त देवताओं के भी परम वन्दनीय होने से ‘महादेव’ कहते हैं । भोलेपन-स्वभाव की सीमा होने से ‘भोलेनाथ’ कहते हैं । सम्पूर्ण सृष्टि में चराचर प्राणियों के प्रिय होने से ‘भूत-भावन’ कहते हैं । अति शीघ्र प्रसन्न होने से ‘आशुतोष’ तथा मुँहमाँगा वरदान देने के कारण ‘अवढरदानी’ कहते हैं । भगवान् श्रीराम के पिता श्रीदशरथजीमहाराज ने भी श्रीशिवजी की प्रार्थना करते हुए कहा था – **‘आसुतोष तुम्ह अवढर दानी । आरति हरहु दीन जनु जानी ॥’** भगवान् शंकर की आराधना सदा से सभी लोगों के द्वारा होती आई है । श्रीराधारानी के पिता श्रीवृषभानुबाबा भी ब्रजेश्वर महादेव के रूप में ‘श्रीभोलेबाबा’ की आराधना करते थे –

“ब्रजेश्वराय ते तुभ्यं महारुद्राय ते नमः । ब्रजौकसां शिवार्थाय नमस्ते शिव रूपिणे ॥”

कहने का तात्पर्य यही है कि श्रीमहादेवजी समस्त जनों के द्वारा पूज्यनीय हैं, इनकी शरणागति सहज ही सबका परम मंगल करती है । श्रीमहाशिवरात्रि के परम पावनमय पर्व पर हम सभी लोग यही याचना करते हैं कि हे भूतभावन भोलेनाथ ! आपको जो परम प्रिय है, उसी सद्भावना के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि का सतत् सुमंगल होता रहे । समस्त जीवों का परम मंगल करने वाले भगवान् शंकर हम सब पर सदा कृपा करते रहें; इन्हीं भावनाओं के साथ भूतभावन भोलेनाथ भगवान् शंकर को हम सबका सतत नमन-वन्दन है ।

एक बार स्वयं श्रीभगवान् नारायण ने नारदजी को एक कथा सुनाते हुए कहा है कि सत्ययुग में परम पराक्रमी धर्मात्मा राजा केदार हुए हैं, उन्होंने फलेच्छा रहित सविधि सौ यज्ञ किए । परम निर्वासनिक (कामनाशून्य) हृदय राजा ने इन्द्र-पद भी त्याग दिया था, प्रत्येक कार्य भगवद्-प्रीत्यर्थ करते थे । एक समय जैगीषव्य मुनि से परमार्थ तत्व का बोध प्राप्त करके भगवत्प्राप्ति की तीव्राकांक्षा से वन में तप करने चले गये । श्रीहरि के अनन्य भक्त थे । अतः सदा सुदर्शन चक्र इनके रक्षार्थ निकट ही रहता था । उत्कट तप के प्रभाव से राजा केदार को नित्य धाम गोलोक की प्राप्ति हुई । जहाँ इन्होंने तप किया था, वह स्थान ही केदारक्षेत्र हुआ । यहाँ प्राणान्त होने से जीव को मोक्ष की प्राप्ति होती है । यह केदार क्षेत्र श्रीभगवान् को बड़ा प्रिय है, इसीलिए केदारक्षेत्र को प्रभु ने कामवन के समीप ब्रज में वास दिया है । कामवन को ‘आदिवृन्दावन’ कहा जाता है । जीवगोस्वामीजी ने अपनी टीका में कामवन को वृन्दावन के अन्तर्गत माना है ।
‘श्रीवृन्दावने काननेषु तदन्तर्गतेषु काम्यकवनादिषु तत्र तयोर्विहारो वेषविशेषश्चोक्तः ।’ (श्रीमज्जीवगोस्वामी कृत वैष्णवतोषिणी १०/१८/१६) यहाँ की स्निग्ध श्वेत-शिलाएँ दिखाती हैं कि यही केदारनाथ का कैलाश है । ब्रह्मवैवर्त-प्रकृति खण्ड, अध्याय-२ में लिखा है – “ये महेश विश्वेश के वामपार्श्व से प्रकट हुए हैं । जब प्रकट हुए तो स्फटिक मणि की कान्ति से युक्त एक अरब सूर्य की भाँति चमक रहे थे ।” पंचमुखी त्रिलोचन के कर कमल में त्रिशूल था । प्रकट होकर वे अपने मूलअंशी श्रीकृष्ण के सन्मुख बद्धाञ्जलि स्तुति करने लगे – **‘जयस्वरूपं जयदं जयेशं जयकारणम् । प्रवरं जयदानां च वंदे तमपराजितम् ॥ विश्वं विश्वेश्वरेशं च विश्वेशं विश्वकारणम् । विश्वाधारं च विश्वस्तं विश्वकारणकारणम् ॥ विश्वरक्षाकारणं च विश्वघ्नं विश्वजं परम् । फलबीजं फलाधारं फलं च तत्फलप्रदम् ॥ तेजःस्वरूपं तेजोदं सर्वतेजस्विनां वरम् ।** (श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्मखण्ड - ३/२४,२५,२६,२७) नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित हो रहे थे और दृष्टि इष्ट के मुखाम्बुज पर अपलक

केन्द्रित थी । तदनन्तर श्री हरि के वाम पार्श्व से ब्रह्मा, महाविष्णु प्रकट हुए । मति से ईश्वरी दुर्गा एवं मन से रमा प्रकट हुई । प्रभु ने सभी देवों को शक्तियाँ प्रदान की । विधि को सावित्री, धर्म को मूर्ति, कामदेव को रति और महादेव को महाशक्ति दुर्गा दीं तो महादेव बोले – "प्रभो ! भुक्ति, मुक्ति, सिद्धि, ब्रह्मपद, रुद्रपद, यहाँ तक कि परमपद की भी मुझे कोई कामना नहीं है क्योंकि ये सब भगवद् सेवा के १६वें अंश की बराबरी भी नहीं कर सकते हैं । मैं तो मात्र आपकी सेवा का इच्छुक हूँ ।" यह सुनकर प्रभु बोले – "हे शशांकशेखर ! तुम १०० करोड़ कल्प पर्यन्त मेरी सेवा करके मृत्यु को जीतकर मृत्युञ्जय हो जाओगे, फिर शिवा को ग्रहण करोगे । जैसे एक माँ शिशु का पालन करती है तदनुसार सती स्त्री भोग से ऊपर उठकर अपने पति का पालन करती है । अतएव हे शिव ! तुम शिवा का तिरस्कार न करना, यह वैष्णवी है, यह तुम्हारा पालन एवं तेज का वर्धन करेंगी ।" तदनन्तर दुर्गतिनाशिनी दुर्गा से बोले – "हे दुर्गे ! तुम मेरे साथ गोलोक चलो । समय आने पर शिव को पति रूप में प्राप्त कर लोगी ।" कालान्तर में भगवद् आज्ञा से महादेव ने भगवती का वरण किया और त्रैमासिक व्रत के द्वारा राधा-माधव युगल सरकार की उपासना कराई । यह व्रत सविधि सबसे पहले भगवान् नारायण ने देवर्षि नारदजी को सुनाया था, इसी व्रत के फलस्वरूप भगवती ने गणेश, कार्तिकेय जैसे दिव्य पुत्र रत्नों को प्राप्त किया । भगवान् रुद्र के उपदेश से देवी भगवती ने सविधि इस व्रत को किया । भगवान् रुद्र ने कहा – "देवि ! वैशाख मास में यह व्रत आरम्भ करना चाहिए । फिर यजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा में वर्णित श्रीजी के रूप का ध्यान करना चाहिए ।

'ध्यायेत् तदा राधिकां च ध्यानं माध्यन्दिने रितं । राधां रासेश्वरीं रम्यां रासोल्लासरसोत्सुकाम् ॥'

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड - १६/८५) रासमण्डल पर आसीन रासेश्वरी, रासोत्सवोल्लासिनी श्रीराधारानी रास की अधिष्ठात्री हैं, इनकी कृपा के बिना रास में प्रवेश वर्जित है । हे देवी ! मुझे (शिव) भी इन्हीं श्रीराधारानी की कृपा से रास में प्रवेश प्राप्त हुआ । **"रसिकप्रवरां रम्यां रमां च रमणोत्सुकाम् । शरद्राजीवराजीनां प्रभामोचनलोचनाम् ॥"** (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड - १६/८७) विकसित विशाल कमलदल की शोभा को भी तिरस्कृत करने वाले इनके आकर्ण विलम्बित, अत्यन्त चित्ताकर्षक अञ्जन-रञ्जित-युग्म नयन; मदन के शर-सन्धान को भी हेय बना देने वाला बङ्किम भ्रू-विलास, शरत्पूर्णिमा के राशि की भाँति मधुर-स्मित-विभूषित-मुख और नवीन दर्पण का गर्व चूर्ण करने वाले गोल कपोलों पर पत्रावली की अपूर्व शोभा है । चरणकमलों में शब्दायमान नूपुर कमल-कोष में उड़ते हुए भ्रमर-पंक्ति के समान नाद कर रहे हैं । रत्नेन्द्रसार रचित जगमगाते हुए हार से युगल-वक्षोज उद्भासित हो रहा है । **"ब्रह्मादिभिश्च सेव्येन श्रीकृष्णेनैव सेविताम्"** (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड - १६/८७) ब्रह्मादि से सेवित श्रीकृष्ण स्वयं सेवक बनकर उन सर्वेश्वरी की पाद-संवाहन सेवा करते हैं ।
हे दुर्गे ! ऐसी कृष्ण-कर्षिणी, करुणा वर्षिणी श्रीजी की मैं आराधना करता हूँ । अतः तुम भी इस त्रैमासिक व्रत के द्वारा श्रीजी की उपासना करो, षोडशोपचार से श्रीजी की पूजा करो । १०८ दिव्य कमल नित्य श्रीजी को चढ़ाओ । "कृष्णाय-स्वाहा" इस मन्त्रोच्चारण के साथ उनको आहुति दो । प्रतिदिन १०८ ब्राह्मणों को भोजन कराओ और सतत् श्रीकृष्ण संकीर्तन करो । जिस दिन व्रत की प्रतिष्ठा (उद्यापन) हो तो १० हजार कमलों की आहुति देना । ९हजार ब्राह्मणों को भोजन कराना, फिर ९० फलों का दान करना । इस व्रत के प्रभाव से १०० जन्मों तक नारी विधवा नहीं होती और अखण्ड पुत्रवती बनी रहती है । तुम प्रत्येक जन्म में मुझे प्राप्त करना चाहती हो, सुन्दर पुत्र चाहती हो तो इस त्रैमासिक व्रत द्वारा श्रीजी की उपासना करो ।" यह सुनकर पार्वतीजी बोलीं – 'यज्ञ करना, दान करना, वेदाध्ययन करना, तीर्थ- सेवन करना, सारी पृथ्वी की परिक्रमा करना' – ये सब भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना का सोलहवाँ अंश भी नहीं है । भगवान् की आराधना सबसे बड़ा तप, सबसे बड़ा जप है । जिसके अन्दर भगवान् की भक्ति है, उसके दर्शन से ही जीव मुक्त हो जाता है । हे नाथ ! हे शम्भो ! ब्रह्मा, विष्णु, धर्म, शेषनाग, आपमें और गणेश में जो तेज है, ये सब उन्हीं राधा-माधव के चिन्तन का प्रभाव है । कृष्ण कृपा से ही मुझे आप जैसे पति और गणेश-कार्तिकेय जैसे पुत्र मिले ।" पार्वतीजी की बात सुनकर महादेवजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले – "हे दुर्गे ! तुम तो महालक्ष्मीरूपा हो । तुम्हारे लिए कोई भी वस्तु असाध्य नहीं है । तुम तो सर्वसम्पत्स्वरूपा अनन्त शक्तिरूपिणी हो । मैं, ब्रह्मा, विष्णु तुम्हारे अन्दर भाव रखने के कारण ही सृष्टि

निर्माण, पालन और संहार में समर्थ हुए । हम सब तुम्हारी सहायता से ही कार्य करते हैं, तुम आद्या शक्ति हो । तुम श्रीराधारानी की उपासना करो । इस व्रत में सनत्कुमार तुम्हारे पुरोहित होंगे । यज्ञ में जितने भी साधन लगेंगें, कमल, द्रव्यादि मैं उसका प्रबन्ध करूँगा । तुम्हारे इस व्रत में दानाध्यक्ष मैं स्वयं रहूँगा । भगवती लक्ष्मी धन की व्यवस्था करेंगी । अग्निदेव स्वयं वेदपाठ करेंगे । अग्नि का नाम है हव्यवाट । सारा यज्ञ का भोजन देवताओं के पास वे ही पहुँचाते हैं । वे अग्निदेव तुम्हारे व्रत में वेदपाठ करेंगे । वरुण देवता आकर जल का प्रबन्ध करेंगे । सभी देवता राधारानी की उपासना में सहयोग देंगे । यक्ष लोग सामग्री ढोयेंगे । स्कन्द स्वामी कार्तिकेय उस सामग्री के अध्यक्ष रहेंगे । इस व्रत में बुहारी लगाने का कार्य वायुदेवता करेंगे, क्योंकि ये श्रीजी की उपासना है । परिवेषण कार्य (परोसने का कार्य) इन्द्र करेंगे । चन्द्रमा इस व्रत के अधिष्ठापक होंगे । सूर्यदेव दान का निर्वचन करेंगे, इसलिए असंख्य ब्राह्मणों को तुम भोजन कराओ ।" भगवान् शंकर ने इस प्रकार से पार्वती जी से त्रैमासिक व्रत का अनुष्ठान कराया जिसके कारण उनको गणेश, कार्तिकेय आदि की प्राप्ति हुई । भगवान् शिव की ऐसी भक्ति है राधा माधव युगल सरकार में । श्रीजी ने पूछा ठाकुरजी से – "भगवान् शंकर अस्थिमाल क्यों धारण करते हैं ? जहर, आक, धतूरा क्यों खाते हैं ?" तब भगवान् कृष्ण बोले – "हे राधे ! एक बार महादेवजी ने साठ हजार युगों तक मेरा भजन किया, उसके बाद मैं प्रकट हुआ । मेरे उस रूप को देखकर उनकी आँखें तृप्त नहीं हुईं, उन्होंने सोचा कि दो ही नेत्रों से इस स्वरूप को क्या देखूँ ? एक ही मुख से इनकी क्या स्तुति करूँ ? ये बात चार बार शिवजी ने कही तो उनके चार मुख और प्रकट हो गये । एक तो पहले से था ही, इस तरह से उनके पाँच मुख हो गये, पाँचों मुखों के दर्शन चक्रेश्वर (गोवर्धन) में है । एक-एक मुख में तीन-तीन नेत्र हो गये, इस प्रकार पन्द्रह नेत्र हो गये, कृष्ण रूप देखने के लिए । हे राधे ! सती जी के अस्थि समूह को ये अपने हृदय में धारण करते हैं, उन्हीं की राख को शरीर पर लगाते हैं । जहाँ-जहाँ सतीजी के अंग गिरे थे, वहाँ सिद्ध पीठ बन गई । अवशिष्ट शरीर को लेकर शिवजी मूर्छित हो गये थे । हे राधे ! तब मैं स्वयं महादेव के पास गया और गोद में लेकर मैंने शिवको उपदेश दिया । तब शिवजी ने काल के द्वारा अपनी प्रिया को प्राप्त किया, उनके सिर पर जो जटायें हैं, वे तपस्याकाल की हैं, जब उन्होंने साठ हजार युग तक तप किया था, तब ये जटायें बन गई थीं; उनका चन्दन में और कीचड़ में समान भाव है ।" "वे सर्प क्यों धारण करते हैं? " श्रीजी ने पूछा, श्रीहरि बोले – "एक बार गरुड़ के भय से सर्प उनकी शरण में गये तो उनकी रक्षा हेतु उनको अपने शरीर में धारण किया और वृषभ पर वे इसलिए बैठते हैं क्योंकि उनके भार का वहन दूसरा कोई कर ही नहीं सकता है, मैं ही वृष रूप से उनके बोझ को सँभालता हूँ ।" "आक-धतूरा क्यों खाते हैं? " राधारानी ने पूछा । ठाकुरजी बोले – "जब पार्वतीजी से उन्होंने त्रैमासिक व्रत द्वारा आपकी आराधना कराई थी तो पारिजात पुष्प, चन्दन, अच्छे-अच्छे सब सुगन्धित पदार्थ उन्होंने हमको समर्पित कर दिए थे । समर्पित वस्तु को वे स्वीकार नहीं करते हैं, इसलिए शिवजी धतूरा, गन्धहीन पुष्प धारण करते हैं । मुझे सब अर्पण करने के कारण वे स्वयं कोई भी अच्छी वस्तु ग्रहण नहीं करते हैं ।" भगवान् श्रीकृष्ण और राधा रानी का यह गुप्त संवाद 'ब्रह्मवैवर्त-पुराण' में वर्णित है ।

"जय महादेव – जय महादेव जय महादेव – जय महादेव । श्रीराधा ने पूछा हरि से शिव मुण्ड भस्म क्यों रमाते । हरि बोले शिव प्रेमी हैं अपना प्रेम निभाते । शिव हित काया भस्म किया था । सती पिता के यज्ञ कुण्ड में । प्रिया शीश माला को धरकर उसी भस्म को धरते तन में । पूछा श्यामा ने क्यों शंकर आक धतूरा खाया करते । हरि बोले सब मधुर मुझे दे आक धतूरा खाया करते । पंच वदन क्यों मम दर्शन हित साठ हजार वर्ष हर तप कर । ब्रह्मवैवर्त रास मान में श्रीजी से यह बोले गिरिधर । जय महादेव – जय महादेव ।" (बाबाश्री द्वारा विरचित पद) भगवान् शिव की प्रीति श्रीराधामाधव युगल रसराज में विशेष भाव से है । 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में आता है कि गर्गाचार्यजी, जो महादेवजी के शिष्य हैं, उन्होंने कहा था कि मैंने शिव से ही राधा-नाम की महिमा सीखी है । भगवान् शिव ने हमको एक दिव्य ज्ञान दिया था । **'रेफो हि कोटिजन्माघं कर्मभोगं शुभाशुभम्'** (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड – १३/१०६) राधा कहने से र कार जो है, उससे तो करोड़ों जन्मों के पाप जल जाते हैं । ये भगवान् केदारेश्वर के उपदेश की अमृतलहरी है । वे ही श्रीजी के नाम की महिमा जानते

हैं । उन्होंने गर्गाचार्य जी को यही सिखाया था और ये गर्गाचार्यजी के ही श्लोक हैं किन्तु 'गर्गसंहिता' में नहीं हैं, 'ब्रह्मवैवर्त' में हैं । **"आकारो गर्भवासं च, मृत्युं च रोगमुत्सृजेत्"** (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड – १३/१०७) र में जो बड़ा 'आ' है, जिससे 'रा' बना है, उस आकार से गर्भवास और मृत्यु भी टल जाती है । केवल 'रा' कहने वाले को कभी भी दुबारा माता के गर्भ में नहीं आना पड़ता है । **"आधो नाम तारिहैं श्रीराधा ।"** **'धकार आयुषो हानिमाकारो भवबन्धनम् ।' 'श्रवणस्मरणोक्तिभ्यःप्रणश्यति न संशयः'** (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड – १३/१०७, १०८) 'ध' कहने से हमारी जो रोज आयु नष्ट होती है, वह रुक जाती है । 'ध' माने धारण करना । ध में जो आ है वह भवरोग को हटाता है । 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में यहाँ तक लिखा है – **'रोगशोकमृत्युयमा वेपन्ते नात्र संशयः'** (ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड – १३/१११) जब कोई 'राधा' नाम लेता है तो रोग, शोक, मृत्यु और यमराज काँपने लग जाते हैं और उन्होंने यह भी कहा है कि यह नहीं समझना चाहिए कि श्रीकृष्ण ब्रज से चले गए । भगवान् ब्रज से कहीं नहीं जाते हैं तब प्रश्न है कि मथुरा, द्वारिका की लीला फिर कैसे हुई? तो उत्तर दे रहे हैं कि भगवान् कृष्ण के अवतार के समय उन्हीं में नारायण, विष्णु, महाविष्णु सब लीन हो गए थे । नारायणअंश वाले कृष्ण को भगवान् द्वारिका भेज देते हैं, स्वयं नहीं जाते हैं । जो राधिका नाथ श्रीकृष्ण हैं, वे ब्रज से बाहर नहीं जाते हैं किन्तु इस रहस्य को बहुत कम लोग जानते हैं । राधारानी को साथ लेकर गोलोक जाते हैं, इसलिए ब्रजवासियों ने कहा था – **"हमारो मुरली वारो श्याम ।"** हमारा तो वंशी वाला श्रीकृष्ण ही एकमात्र सब कुछ है; द्वारिका, मथुरा वाले कृष्ण को हम नहीं जानते हैं । राधा नाम के बारे में तो यहाँ तक कहा है – **"चक्रं चक्री शूलमादाय शूली, पाशं पाशी वज्रमादाय वज्री । धावन्त्यग्रे पृष्ठतो बाह्यतश्च, राधा राधा वादिनो रक्षणाय ॥"** (श्रीहरिलीलामृत तन्त्र) जो राधा-राधा कहता है, उसकी रक्षा के लिए विष्णु भगवान् चक्र लेकर, इन्द्र वज्र लेकर, महादेव त्रिशूल लेकर, ये सब राधा नाम लेने वाले के आगे-पीछे उसकी रक्षा के लिए घूमते हैं । महादेवजी ने 'गोपाल सहस्त्रनाम' में और विस्तार से बताया है, इसके अतिरिक्त 'राधाकृपाकटाक्ष' स्तोत्र जो है, यह "ऊर्ध्वाम्नाय तंत्र शिवगौरीसंवादे" में महादेवजी ने भगवती दुर्गा को सिखाया था, यह साधारण नहीं है, ये भी महादेवजी द्वारा गाया गया है; उसमें कहा गया है – **"अनन्त-कोटि-विष्णुलोक-नम्रपद्म जार्चिते"** अनन्त कोटि विष्णु धाम हैं, कोई महावैकुण्ठ है, कोई श्वेत वैकुण्ठ है, कोई श्वेत द्वीप है, कोई रमा वैकुण्ठ है । इनमें जितनी भी पद्मजा लक्ष्मियाँ हैं, वे सब राधारानी की उपासना करती हैं । **"हिमाद्रिजा-पुलोमजा-विरंचिजावरप्रदे"** हिमाद्रिजा माने अनन्त पार्वतियाँ, पुलोमजा माने अनन्त इन्द्राणियाँ, विरंचिजा माने अनन्त सरस्वतियाँ श्रीराधारानी की उपासना करती हैं । राधारानी के चरणों में अनन्त समृद्धियाँ हैं – **"अपार सिद्धिवृद्धिदिग्ध सत्पदाङ्गुलीनखे । कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्ष भाजनम् ॥"** श्रीजी की उपासना के बारे में यह महादेवजी का दृष्टिकोण था । इसके अतिरिक्त महादेवजी ने पुण्यक व्रत द्वारा श्रीजी की महिमा को और स्पष्ट किया । देवी पार्वती ने प्रभु की प्रसन्नता प्राप्ति के लिए पुण्यक व्रत किया, इस व्रत में स्वयं सनकादिक ब्राह्मण बने और दक्षिणा रूप में महादेवजी को माँगा । पार्वती जी ने मना कर दिया । तब समस्त देवी-देवगणों ने आकर पार्वती जी को समझाया और वे महादेव जी को दक्षिणा रूप में देने को उद्यत हो गईं । दिए जाने पर यह हुआ कि महादेव जी के बराबर गौदान करने पर महादेव जी को पुनःप्राप्त कर सकती हैं किन्तु सनकादिक अस्वीकार करते हुए बोले – "हम ऐसा विनिमय नहीं करेंगे, हम तो दिगम्बर के साथ अतीत अटन करेंगे ।" यह सुनकर पार्वतीजी शरीरान्त को तैयार हो गईं । तत्क्षण एक तेजपुञ्ज प्रकट हुआ, पार्वतीजी ने स्तवन किया, तदोपरान्त श्रीकृष्ण ने पार्वतीजी को अपने दिव्य स्वरूप का दर्शन कराया, पार्वतीजी ने उस स्वरूप को देखकर उन्हीं के समान पुत्र की इच्छा प्रकट की और तत्क्षण उन्हें ऐसा वरदान प्राप्त हो गया । तेजःस्वरूप श्रीकृष्ण वहाँ आये हुये देवताओं की भी अभिलाषा पूर्ण करके वहीं अन्तर्धान हो गये, तदनन्तर उन्हीं कृपालु देवों ने सनत् कुमार को समझा-बुझाकर पार्वती को शिव लौटा दिये, अनन्तर गणेशजी के रूप में श्रीकृष्ण ने ही अवतार लिया ।

श्रीब्रज-संरक्षक 'दाऊ दयाल'

श्रीगर्गसंहितानुसार – श्रीशेष से ही धाम प्रकट होता है अतः दाऊ दयाल ही ब्रज के राजा हैं । एक समय ब्रह्मा-शिवादि देव गोलोक धाम पहुँचे । सर्वप्रथम इन्हें वहाँ विरजा के तट पर एक तेजोमय नगर दिखाई पड़ा । ध्यान लगाने पर उसमें एक परम शान्तिमय साकार धाम का दर्शन हुआ जिसमें उज्जवल धवल सहस्रमुख वाले श्रीशेष विराजित थे । शेष जी की गोद में लोक वन्दित परम प्रकाशमय गोलोक धाम का दर्शन हुआ जहाँ काल का भी प्रवेश नहीं है ।

तज्ज्योतिर्मलेऽपश्यत्साकारं धाम शान्तिमत् तस्मिन्महाद्भुतं दीर्घं मृणालधवलं परम् । सहस्रवदनं शेषं दृष्ट्वा नेमुः सुरास्ततः ॥
तस्योत्संगे महालोको गोलोको लोकवन्दितः । यत्र कालः कल्यतामीश्वरो धाममानिनाम् ॥ (गर्गसंहिता, गोलोकखण्ड २/१७, १८)

इस प्रकार शेषजी से ही धाम का प्राकट्य होता है । धाम के प्राकट्य कर्ता होने से शेष अवतार दाऊ दयाल ही ब्रज के राजा हैं । परब्रह्म का आधार वे स्वयं शासक रूप में हैं । अन्तिम मूल का कोई मूल न होने से उन्हें अमूल कहा जाता है । अन्तिम प्रकाशक का कोई प्रकाशक न होने से वह स्वयं प्रकाश कहलाता है । इसी प्रकार सबका अन्तिम आधार होने से स्वयं प्रतिष्ठित कहलाता है । श्रुति भी यही कहती हैं – **'स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि'** (छान्दोग्योपनिषद् ७/२४/१) वह परब्रह्म किसमें प्रतिष्ठित है अर्थात् किसी में नहीं । वह तो स्वस्वरूप में ही प्रतिष्ठित है – 'शिष्यते यः सषेशः' जो शेष रहे, वही 'शेष' है; प्रलयान्त में विधि की द्विपरार्ध आयु व्यतीत होने पर सब कुछ नष्ट होने पर भी शेष रहता है, इसी से उन्हें शेष कहा गया है । **"उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयाऽऽसन् । यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन् नानाधात्कथमु ह वेद तस्य वर्त्म ॥"** (श्रीभागवतजी ५/२५/९)

श्रीनारदजी के वचन – शेष जी की दृष्टि मात्र से ही सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय आदि के हेतुभूत सत्वादिगुण अपना-अपना कार्य करते हैं, उनका स्वरूप अनन्त व अनादि है । नानात्मक प्रपञ्च को स्वयं में ध्यान करने वाले संकर्षण तत्व को जानना कठिन ही है । कभी वे अनन्त के रूप में, तो कभी लक्ष्मण के रूप में, तो कभी बलराम के रूप में आते हैं ।

शक्ति रूप में शेष – शाक्त मतानुसार कुण्डलनी के प्रतीक श्री बलराम जी हैं । 'तोडल तन्त्र' में श्रीबलराम जी को भैरवी का प्रतीक माना है – **"तारा देवी नीलरूपा, कमला कूर्म चण्डिकाः। धूमावती वाराहस्यात् छिन्नमस्ता नृसिंहका । भुवनेश्वरी वामन स्यात् मातंगी राम मूर्तिका । त्रिपुरा जामदंग्यात् बलभद्रस्तु भैरवी॥"** वैदिक धर्म का शुभारम्भ चतुर्व्यूह उपासना से होता है । उस चतुर्व्युह (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध) में आप संकर्षण के रूप में विद्यमान हैं । ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रज मण्डल के प्राचीनतम देव बलदेव हैं । चितौड़ के शिलालेखों में, जो कि ईसा से पाँचवीं शताब्दी पूर्व के हैं, बलदेव उपासना इंगित की गई है । अर्पटक भोर गाँव और नाना घटिका के शिलालेख जो कि ईसा के प्रथम-द्वितीय शताब्दी के हैं । जुनसुटी की बलदेव मूर्ति शुंगकालीन है । न केवल ब्रज और भारत में प्रत्युत यूनान, अफगानिस्तान, रूस आदि सुदूर देशों में भी श्रीबलरामजी की पूजा-अर्चना प्रचलित थी, जिसका प्रमाण वहाँ के उत्खनन से प्राप्त हुए बलदेव विग्रह हैं । इसके अतिरिक्त यूनान के शासक अगाथोक्लीज के समय में रजत मुद्राओं पर बलदेव जी का अंकन होता था । ये मुद्राएं अद्यावधि अनेक पुरातत्व संग्रहालयों में द्रष्टव्य हैं । अफगानिस्तान से भी कुछ ऐसी रजत मुद्राएं प्राप्त हुई हैं, ये सभी ईसा पूर्व की हैं । मथुरा के पुरातत्व संग्रहालय में श्रीबलराम जी की लगभग ३० दिव्य मूर्तियाँ हैं जिनमें कुछ कुषाण कालीन, कुछ शुंग कालीन, कुछ गुप्त कालीन और कुछ मध्य कालीन हैं, जो ईसा से दो-तीन शताब्दी प्राचीन हैं । भारत वर्ष में बलराम जी सर्वत्र विराजित हैं । जगन्नाथपुरी में जगन्नाथ के साथ विराजित हैं । उत्तर में जम्मू से कन्याकुमारी के मध्य चेन्नई में बलदेव मन्दिर है । जिस समय बलराम जी ने तीर्थाटन किया, दक्षिण के सभी तीर्थों में गए, अतः वहाँ अनेक देवालय हैं । उड़ीसा के केंद्र पाड़ा में बलराम जी का बड़देव जू के नाम से प्रख्यात मन्दिर है ।

ब्रज भूमि में तो ब्रज के राजा होने से आप सर्वत्र ही विराजित हैं किन्तु दाऊ जी के अनेक स्थलों में प्रसिद्ध है "बलदेव ग्राम" । मथुरा जनपद नगरी ब्रज मण्डल के पूर्वी छोर पर मथुरा से २१ कि.मी. की दूरी पर एटा-मथुरा मार्ग के मध्य बलदेव ग्राम स्थित है, जिसका पौराणिक नाम विद्रुम वन है । गर्ग संहितानुसार – कोल दैत्य के वध उपरान्त श्रीबलराम

जी जह्नु तीर्थ गए। वहाँ से पश्चिमी भाग में 'आहार स्थान' में रात्रि विश्राम किया। ब्राह्मणों की समुचित सेवा करके अगले ही दिन वहाँ से एक योजन दूर मण्डूक देव के पास गए। मण्डूक देव ने श्री बलराम जी की कृपा प्राप्त करने के लिये उत्कट तप किया था। ध्यानस्थ मण्डूक देव पर श्री बलराम जी ने कृपा की एवं अपना साक्षात्कार कराया। मण्डूक देव ने श्रीबलराम जी की स्तुति की। इस पर प्रसन्न होकर उन्होंने वर माँगने के लिए कहा –

मण्डूक देव बोले – हे प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो भागवत संहिता प्रदान करें। श्रीबलराम जी ने कहा – वह तो तुम्हें उद्धव जी से ही प्राप्त होगी। तदन्तर बलराम जी आगे चले तो अनेक देव व ब्रह्मऋषियों ने प्रार्थना की – हे भगवन! हम जब-जब संकट में पड़ें तो आपके चरणों का चिंतन करें व आपकी कृपा से समस्त बाधाओं से मुक्त हो जाएँ। श्रीबलराम जी ने कहा – **"यदा यदा मां स्मरथ तदाऽहं शरणागतान्। रक्षिता स्यां कलौ नूनमिति सत्यं वचो मम ॥"** (गर्गसंहिता, मथुराखण्ड २४/१०२) जब-जब आप लोग शरणापन्न होकर मेरा स्मरण करेंगे तब-तब कलियुग में मैं निश्चय ही आप सबकी रक्षा करूँगा। विद्वान सन्तों का मानना है कि कलिकाल में मण्डूक देव जी श्रीकल्याण देव जी के रूप में अवतरित हुए जिन्होंने श्रीबल्देवजी को प्रकट किया और श्रीबलरामजी ने दुर्धर्ष आसुरी शक्ति को पराजित किया।

अवतरण-लीला – गोवर्धन की तलहटी में 'भर्ना खुर्द' ग्राम के सूर्य कुण्ड तट पर परम सात्विक विप्र श्रीकल्याण देव जी भजन करते थे। एक समय श्री कल्याण देव जी अन्तःप्रेरणा से जगन्नाथ पुरी की यात्रा के लिए निकले। मानसी गंगा में स्नान करके मथुरा पुरी में पहुँचे। वहाँ यमुना स्नान करके चले तो विद्रुम वन आये। सघन एकान्त वह स्थान बहुत ही प्रिय लगा एवं कुछ दिन यहाँ भजन करने का निश्चय किया। एक दिन स्वयं हलधर श्रीबलराम जी उनके सन्मुख प्रकट हुए और वरदान माँगने को कहा, इस पर कल्याणदेवजी ने कहा – भगवन ! मुझे आपके नित्य दर्शन के अतिरिक्त कुछ भी अभीष्ट नहीं है अतः आप नित्य मेरे घर में विराजें। बलराम जी ने कहा – हे विप्र देव! इस वट वृक्ष के नीचे भूमि में मेरी एवं रेवती की प्रतिमा दबी हुयी है, तुम उसे प्रकट करो। सुनते ही बलदेव जी की व्यग्रता और प्रसन्नता दोनों ही बढ़ गयी। भूमि खनन का कार्य आरम्भ हुआ। दूसरी विचित्र बात यह हुयी कि उसी रात्रि श्रीमद् वल्लभाचार्य महाप्रभु के पौत्र गोस्वामी श्री गोकुल नाथ जी को प्रभु ने स्वप्नादेश किया – मैं विद्रुम वन में वट वृक्ष के नीचे भूमिस्थ हूँ, आपकी श्यामा गो नित्य मेरी प्रतिमा के ऊपर आकर दूध स्रवित करती है। आप शीघ्र मुझे प्रकट करो। प्रातः होते ही गोस्वामी गोकुलनाथ जी भी विद्रुम वन आये। वहाँ कल्याण देव जी के द्वारा पूर्व ही खनन कार्य चल रहा था। दोनों परस्पर मिले एवं अपना-अपना वृत्तांत सुनाया एवं प्रसन्नता के साथ श्रीरेवतीरमण को प्रकट किया किन्तु एक सघन वन में सेवा कार्य कैसे होगा अतः गोस्वामी गोकुल नाथ जी ने श्रीबलराम व रेवती जी को गोकुल में प्रतिष्ठित करने की इच्छा व्यक्त की। एतदर्थ अनेक प्रयत्न किये किन्तु मूर्ति अपने स्थान से हिली तक नहीं। तब प्राकट्य स्थान पर ही प्रतिष्ठा हुई। यह वही स्थान था जहाँ कल्याण देव जी भजन करते थे। नित्य घर में बलरामजी के निवास की याचना करते थे, वह पूर्ण हुई। श्रीकृष्ण के प्रपौत्र श्रीवज्रनाभ जी द्वारा चार देवों में एक बलदेव हैं। कालान्तर में यह भूमिष्ट हो गए थे। पुरातत्ववेत्ताओं का कथन है कि यह विग्रह २००० वर्षों से भी प्राचीन है। ब्रज मण्डल के प्राचीन देव विग्रहों में बलदेव जी का विग्रह सर्वाधिक प्राचीन एवं विशाल है। यह श्याम वर्ण की मूर्ति लगभग आठ फुट ऊँची व साढ़े तीन फुट चौड़ी है, पीछे शेषनाग सात फणों से छाया किये हुए हैं। मूर्ति नृत्य मुद्रा में है, दाहिना हाथ सिर से ऊपर वरद मुद्रा में है एवं बाँए हाथ में चषक है। (श्रीभागवतजी ५/२५/७) विशाल नेत्र, भुजाओं में आभूषण, कलाई में कड़ूला उत्कीर्णित है। कटि में धोती धारण किये हुए हैं, एक कान में कुण्डल हैं व गले में वैजन्ती माला है। मूर्ति के सिर के ऊपर से चरणों तक शेष नाग स्थित है। तीन वलय हैं जो योग शास्त्र की कुण्डलनी शक्ति के प्रतीक हैं। श्रीदाऊजी के विषय में प्रसिद्ध है कि – "ब्रज मण्डल भाजन परी भाजि गए सब देव। श्रीयमुना सूनी पड़ी द्वार अड़े बलदेव॥" मण्डूक देव को दिया हुआ वचन "मैं कलियुग में आप सब की रक्षा करूँगा" श्री दाऊ जी ने पूर्ण किया। चाचा वृन्दावन दास जी की वाणी में – **"प्रथम सोनहद पुनि वनचारी षांभी (खाम्बी) षंभ (खम्ब) गड़यौ जु सुनाऊँ ॥"**

श्रीदाऊजी ने खाम्बी में खम्ब गाड़ा है, जो अद्यावधि दर्शनीय है । पूरब चौकी रोहिणी नन्दन रीढ़ो ग्राम नाम कहे सब जन ।

पूर्व में रीढ़ा ग्राम (बलदेव ग्राम) में दाऊजी प्रकट हुए हैं, इस प्रकार चारों दिशाओं में स्थित होकर दाऊजी ने ब्रज की रक्षा की है । श्रीनन्दनन्दन के ये अग्रज संकर्षण ही इस ब्रज धरा के अधिष्ठातृ देव हैं, यानि बड़े भैया दाऊ दादा ही ब्रज के राजा हैं । राजा का कर्तव्य है समस्त प्रजाजनों को पुत्रवत् स्नेह व दया का भाजन बनाये, सो तो आपमें भरपूर है और सच पूछा जाय तो इसीलिए आपका नाम 'दाऊ दयाल' है – **"ब्रज के राजा इनको कहियत दीनदयाल बड़े बलराम ।"** (बाबाश्री कृत रसिया) तो अनुज में दया का व्यसन न्यून है क्या? नहीं न्यून तो नहीं है किन्तु भक्तों पर ही इस व्यसन की वृष्टि होती है, अभक्तों पर नहीं, अभक्तों के लिये तो अनुज का सिद्धांत बड़ा नृशंस है – **"जो मम भक्त सौं बैर करत है सो बैरी निज मेरो । देख विचार भक्त हित कारण हाँकत हौं रथ तेरौ ॥"** किन्तु अग्रज के प्रेमपात्र पाण्डव तो थे ही, आपने कौरवों में ज्येष्ठ प्रमत्त-पापी दुर्योधन से भी समान प्रेम किया । तभी तो अनुज ने ही बड़े भैया का मधुर नूतन नामकरण कर दिया अर्थात् श्री कृष्ण ने ही दाऊ जी को दयाल नाम दिया, अन्य ने नहीं । देखिये भागवत जी – श्रीकृष्ण ने ही दाऊ जी को ब्रज के अधिष्ठाता पद पर प्रतिष्ठित किया । गौचारण काल में श्रीकृष्ण कहते थे – (श्रीभागवतजी १०/१५/४) 'स तत्र तत्रारुणपल्लवश्रिया' श्रीकृष्ण कथन – "दादा ! जहाँ से आप शीतल ज्योत्सना का विस्तार करते हुए निकलते हैं, वहाँ के पत्र-पुष्प-पाषाण, चर-अचर सम्पूर्ण प्रकृति आपका स्वागत करती है ।" फिर कहते हैं – "दादा ! आज से आपका एक नवीन नाम और हो गया है, वो क्या ?" **"एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं गायन्त आदिपुरुषानुपदं भजन्ते । प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् ॥"** (श्रीभागवतजी १०/१५/६) यहाँ इस श्लोक में अनघ शब्द का प्रयोग श्रीकृष्ण ने दाऊ जी के लिए किया, अनघ का तात्पर्य? "नास्ति विद्यते अघः भक्तानां यस्मिन्" इतनी अपरिमित दया है कि भक्तों के अपराधों पर तो कदापि ध्यान जाता ही नहीं है । इसलिये अनुज ने तो आपको दाऊ दयाल सम्बोधन दे दिया । यों तो सम्पूर्ण ब्रज वसुंधरा आपके चरणों से चिन्हित हुई, किन्तु विशेष आत्मीयता प्राप्त की बलराम ग्राम ने, मत्स्यपुराणानुसार जिसका नाम विद्रुम वन है, कारण – जिस समय कंस के अत्याचार के कारण रोहिणी जी महावन के सौभाग्य वर्द्धन हेतु यहाँ की पावन अवनि पर विराज रही थीं, उस समय यहाँ विद्रुम की लताओं से उत्पन्न मूंगा और मणियों को लेने यहाँ आती थीं । उनसे सुन्दर-सुन्दर हार बनाकर उससे कृष्ण-बलराम का श्रृंगार किया करती थीं । विद्रुम का बाहुल्य ही इस धरा के विद्रुमवन नाम होने का हेतु बना । तप्तकाञ्चनवर्णा मैया रोहिणी का सौभाग्य ही ऐसा उत्कृष्ट है, जिन्हें गोकुल, मथुरा, द्वारिका तीनों सर्ग की निखिल लीला का दर्शन लाभ मिला । मत्स्यपुराणानुसार मैया ने यहाँ स्नान के पश्चात् मुक्ता दान किया, अतः यहाँ उनका रोहिणी कुण्ड भी है । मैया रोहिणी के कोमल चरणों से चिन्हित, दाऊ दादा के स्वकरों से लालित पोषित पल्लवित विद्रुमवन के बारे में मत्स्यपुराण का कथन है – **विद्रुमार्यागता यत्र रोहिणीभूषणाय सा । स्नानं चकार शुद्ध्यर्थं मुक्तादानं करोति सा ॥ विद्रुमोद्भवरूपाय तालांकरचिताय च । सर्वसौंदर्यगन्धाय वनाय च नमोस्तुते ॥** (मत्स्य पुराण) यहाँ एक विशाल कुण्ड भी है, स्थानीय जनश्रुति के अनुसार इसे क्षीरसागर कहते हैं । ब्रजभक्ति विलास व आदिपुराणानुसार इसे दुग्ध कुण्ड के नाम से भी जाना जाता है । इसका कारण है कि जिस समय श्रीकृष्ण पुत्र अनिरुद्ध ने दिग्विजय की, तो उस समय उनका समस्त यादवीय विशाल सेना समुदाय सहित ब्रज प्रदेश में भी आगमन हुआ, तब नन्द बाबा ने उन सभी को आमंत्रित किया । उत्तम सर्वलक्षण सम्पन्न लक्ष-लक्ष गायों के दुग्ध से इस कुण्ड को पूरित किया गया, जिससे कोटि यादवजन एक साथ भोजन करें अतः इसका नाम दुग्ध कुण्ड है । गोपक्रीड़ा के चतुर नायक 'दाऊ जी' हैं । ब्रज की मर्यादा ही ऐसी है जिसकी दृष्टि में न कोई ब्रह्म है, न परमात्मा, यहाँ की मर्यादा इतनी मात्र है कि बस गँवार बन जाओ, सो तो कान्हा और दाऊ जन्म लेते ही बन गये थे, तभी तो सख्य रस की प्रधान गोप क्रीड़ा के चतुर नायक बन सके अन्यथा बिना गँवार बने ये सब कहाँ सम्भव था? श्रीकृष्ण-बलराम की गोपलीला विशेष देखें – (श्रीभागवतजी १०/११/३९,४० एवं १०/१२/४-१०) । श्रीबलरामजी महान् पराक्रमी हैं । अरे हमारे दाऊ दादा न होते तो क्या कोई धेनुक को मार पाता ? क्या कोई प्रलम्ब से पंगा ले पाता ?

क्या कोई बल्वल से बल आजमा पाता ? हमारे छोटे भैया कृष्ण कन्हैया ने तो वह कर दिखाया जो साधारण मानव नहीं कर पाता अर्थात् – नाना अमानुषिक कार्य किये और बड़े भैया बलरामजी ने तो वह कर दिखाया जो अनुज के भी बस की न था । 'ब्रज के राजा' दाऊ दादा कहलाते हैं । 'गर्गसंहितानुसार' चाक्षुषमन्वन्तर में चाक्षुष मनु के यहाँ नागलक्ष्मी जी ज्योतिष्मती के रूप में अवतीर्ण हुई, वैवस्वत मन्वंतर की २७ चतुर्युगी व्यतीत होने पर बर्हिष्मती ही राजा रैवत के यहाँ रेवती रूप में आईं, जिनका पाणिग्रहण हमारे दाऊ दादा के साथ हुआ, जिससे वे रेवतीरमण कहलाये । बलदेव गाँव के इस मंदिर में यहाँ रेवती-मैया वाम भाग में न होकर आमने-सामने हैं, इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे शरमा रहीं हैं, इसलिए वहाँ खड़ी हैं, ये तो प्रेम वैचित्री है, दोनों सदा एक-दूसरे को देखते हैं । एक-दूसरे को देखने से प्रेमाशक्ति प्राप्त होती है – **"मिलिबो नयनन ही को नीको । चारों नयन भये इक ठौरे, धोको मिट गयो जी को । खट्टी छाछ मने नहिं भावै 'सूर' पिवैया घ्यो को । "** 'श्रीदाऊजी का होरंगा' भी अति प्रसिद्ध है । 'बरसाने की रंगीली होरी' – 'दाऊजी के हुरंगा' का इतिहास, राम-श्याम के विवाहोत्सव के रूप में 'राधारमण-रेवतीरमण 'राम-श्याम' का विवाहोत्सव ही बरसाने में होरी व दाऊजी में हुरंगा के रूप में मनाया जाता है । **"पल्ले पर गई रंग में रंग दई होरी खेलत रसिया । लंहगा सबरो रंग में कर दियो रंग दइ अंगिया ।रंग बिरंगी कर के छोड़ी रंग दइ फरिया ॥ डफ लै होरी गावन लाग्यो दै दै हँसिया । हाँसी सुन रिस लागै बदलो लूँगी मन बसिया ॥ रसिया की धोती पकड़ी मैंने मूठन के कसिया । धोती फाड़ बनयो कोड़ा पीटयो मन भरिया ॥ पिट-पिट के हू फाग सुनावै दाऊ को भैया । ऐसो भयो होरंगो ब्रज में गावै दुनिया ॥"**

आयुर्वेद व चीनी पद्धति द्वारा कमर के दर्द व पैर की नसों आदि का उपचार सम्भव

मानव सेवा प्रकल्प संस्था के अध्यक्ष मथुरा क्षेत्र रिफाइनरी के गाँव बाद के रहने वाले ठाकुर चंदन सिंह वैद्य द्वारा अब तक कई मरीजों को चीनी थेरेपी द्वारा स्वस्थ किया गया है । वैद्यजी ने बताया कि शरीर के अंदर रीढ़ की हड्डी की समस्या एक ऐसी बीमारी है, जिसका इलाज करते-करते रोगी खुद बर्बाद हो जाता है; एलोपैथी में इसका सफल इलाज सम्भव नहीं है । बता दें कि रीढ़ की हड्डी का इलाज एलोपैथिक डॉक्टर करते हैं, उसका ऑपरेशन भी कर देते हैं लेकिन ऑपरेशन होने से बहुत-से रोगी अपने पैरों पर खड़े नहीं हो पाते, इसकी वजह है स्लिपडिस्क का ऑपरेशन करने के उपरान्त रोगी के पैर साथ छोड़ जाते हैं, भले ही बड़े न्यूरोसर्जन रीड की हड्डी ठीक करने का प्रयास तो करते हैं परन्तु सफल नहीं हो पाते हैं लेकिन मथुरा के थाना रिफाइनरी क्षेत्र गाँव बाद में देसी जड़ी-बूटी और चीनी-थेरेपी की पद्धति पर आधारित थेरेपी से रीड की हड्डी का सफल इलाज किया जाता है । गाँव बाद के निवासी वैद्य चंदन सिंह कहते हैं कि रीड की हड्डी के आसपास नसों का जाल होता है, जिससे ऑपरेशन के दौरान कोई न कोई नस कट जाती है, जिससे रोगी जिंदगी भर के लिए अपाहिज हो जाता है; जबकि चीनी-पद्धति इलाज से थेरेपी होती है, उससे मरीज की नस नहीं कटती है; वह पिछले पाँच साल से स्लिप डिस्क, साइटिका, नसों का दर्द, गठिया वायु का सफल इलाज कर चुके हैं । वैद्य चंदन सिंह की खासियत है कि वह Mir नहीं कराते, वे मरीज को हाथों से देखकर ही बता देते हैं कि कमर में रोग कहाँ है ? मरीज का देखकर उपचार करते हैं, ऐसा इलाज़ चीन में किया जाता है, जहाँ पर तीन माह में मरीज पूरी तरह ठीक हो जाता है । वैद्यजी अपना अनुभव भी बताते हैं कि जब वह स्वयं इस कमर के रोग से पीड़ित हो गए थे, उनके पैर भी काम करना छोड़ गए थे, तब उन्होंने कई जगह इलाज कराया, यहाँ तक कि जयपुर के प्रतिष्ठित न्यूरोसर्जन से उन्होंने १५ महीने तक अपना इलाज कराया था, कहीं से लाभ नहीं मिला; इस दौरान एक बार वह बरसाना गये तो वहाँ पर श्रीराधा रूप में एक किशोरी 'बालिका' आयी, वह भटिंडा पंजाब के रहने वाले चिरागदीन मलिक का पता बता कर अन्तर्धान हो गई, इसके बाद वह भटिंडा में चिरागदीन मलिक के पास पहुँचे, तो वहाँ उनको सही किया गया; इसके उपरान्त वह स्वयं चिरागदीन मलिक के शिष्य बन गए और शिष्य बनने के बाद वह चीनी-थेरपी की पद्धति से लोगों का उपचार कर रहे हैं ।

‘मान मंदिर कला अकादमी’ द्वारा रंगीली होली पर आयोजित नाटिका के दृश्य

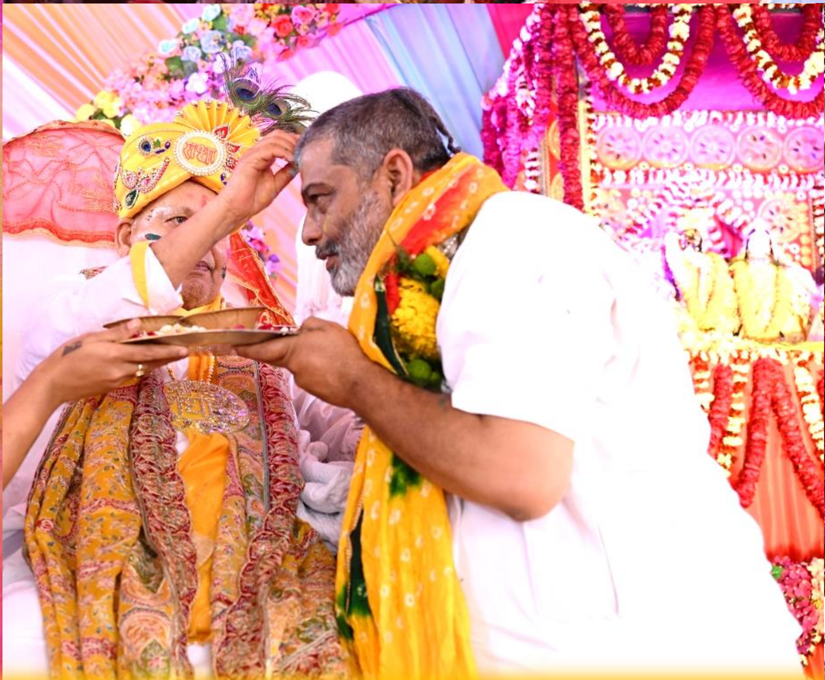

श्रीमाताजी गौशाला में पूज्यश्री बाबामहाराज के सानिध्य में 'रंगीली होरी' का उत्सव बड़ी धूम से मनाया गया

RNI REFERENCE NO. 1313397- REGISTRATION NO. UP BIL-2017/72945-TITLE CODE UP BIL-04953 POSTAL REGD.NO. 093/2024-2026 श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा 'गुप्ता प्रिन्टिंग प्रेस, खरौट गेट, कोसीकलाँ, मथुरा. उत्तरप्रदेश' से मुद्रित एवं मान मन्दिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से प्रकाशित,AGRA/WPP-12/2024-2026 AT 31.12.26